श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का मुखपत्र हिंदी मासिक

विवेक शिखा

वर्ष–१० फरवरी–१९९१ अंक–२

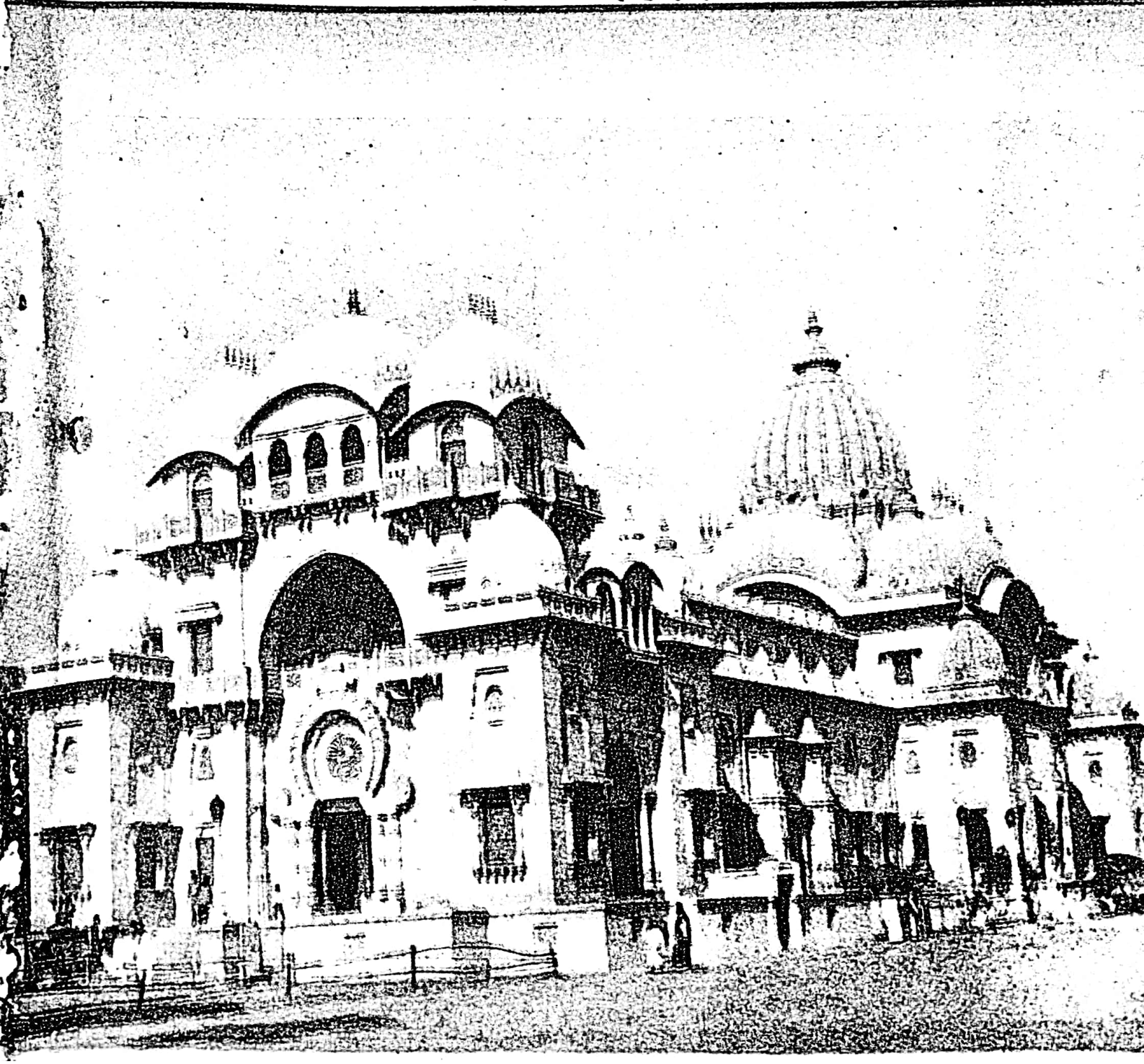

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा—छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, मुगरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे – सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता—परौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला—जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे—पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. शर्मा – अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. गाओ ना, मन गाओ ना;	सारदातनय	२
३. भावराज्य के अधिराज—श्रीरामकृष्ण	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. आज के जीवन में श्रीरामकृष्ण के आदर्श की प्रासंगिकता	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	६
५. नरदेव—श्रीरामकृष्ण (६)	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	११
६. भगवान श्रीरामकृष्ण की शिक्षाएं	श्री जी० एन० रायचौधुरी	१७
७. महागुरु महादेव	श्री हरिन्द्रानन्द	२२
८. प्रेरणादायक है शिव-पार्वती का व्यक्तित्व	डॉ० नागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र'	२४
९. सरल निर्गुण साधक संत रवि दास	श्री सुनील कुमार तिवारी	२६
१०. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिक

वर्ष – १० | १९९१—फरवरी | अंक – २

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा–८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

माया पाश से मुक्त होने के लिए हमें किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए ? मायापाश से छुटकारा पाने के लिए जो व्याकुल होता है, उसे स्वयं भगवान ही उपाय बता देते हैं। इसलिए व्याकुलता ही आवश्यक है।

(२)

तालाब के जल पर छाई हुई काई या जंगली बेलों को हटा देने पर वे फिर आकर जल पर छा जाती हैं, पर यदि उन्हें हटाकर बाँस के घेरे बाँध दिए जाएँ तो फिर वे नहीं आ सकतीं। इसी प्रकार, माया को हटा देने से वह फिर आ खड़ी होती है; परन्तु यदि उसे हटाकर ज्ञान-भक्ति का घेरा बाँध दिया जाए तो फिर वह नहीं आ पाती। तभी भगवान् प्रकाशित होते हैं।

(३)

विषयी लोगों की पूजा, जप, तप सब कुछ सामयिक होता है, टिकता नहीं। जो ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं जानते वे साँस-साँस में उनका नाम लेते रहते हैं। कोई मन ही मन 'ॐ राम ॐ' जपता रहता है। ज्ञानमार्गी साधक 'सोऽहम्' 'सोऽहम्' जपता जाता है। किसी किसी की जीभ तो सदा हिलती ही रहती है।

(४)

अवतार के लिए कुछ भी कठिन नहीं। जीवन की जटिल और गूढ़ समस्याओं को इतनी सरलता से वे हल कर देते हैं कि एक बच्चा भी उसे समझ ले। वे ज्ञान सूर्य हैं। उनके प्रकाश से युगों का संचित अज्ञान-अंधकार दूर हो जाता है।

गाओ ना, मन गाओ ना !

—सारदातनय

(पटदीप-कहरवा)

गाओ ना, मन गाओ ना,
प्रभु रामकृष्ण गुण गाओ ना ।
प्रभु रूप निरंतर ध्याओ ना ।।
करुणामय-प्रभु-दीन शरण हैं
जग जन के सब दुःखहरण हैं ।
परमशान्ति-चिरसुख-वितरण हैं
प्रभु से प्रीति लगाओ ना ।।

प्रभु ही जीवन-प्राण हमारे
परमानन्द-निधान हमारे
बीत चला है जीवन छिन छिन
गँवा न अवसर वृथा भजन बिन ।
सुमिरन कर प्रभुलीला निस दिन
भव - सागर तर जाओ ना ।।
गाओ ना, मन गाओ ना ।
प्रभु रामकृष्ण गुण आओ ना ।
प्रभु रूप निरन्तर ध्याओ ना ।।

□

सम्पादकीय सम्बोधन

भावराज्य के अधिराज—श्रीरामकृष्ण

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

अनेक लोग जो श्रीरामकृष्ण की उपासना-आराधना करते हैं उनके मन में प्राय: एक प्रश्न उठा करता है। और यह प्रश्न वैसा ही होता है जैसा किसी अन्य देवता के उपासकों के मन में अक्सर उठा करता है। वे कहते हैं, दोनों शाम जप-ध्यान हम करते हैं, नाम-गान करते हैं, बीच-बीच में बेलुड़ मठ, कामारपुकुर और काशीपुर का भ्रमण करते हैं किन्तु श्रीरामकृष्ण देव का साक्षात्कार तो कहीं होता नहीं। वे तो कहीं दीखते नहीं ! इससे एक प्रकार की निराशा आ घेरती है। एक शंका जनम ले लेती है मन में कि कहीं हम दिग्भ्रमित तो नहीं हो रहे हैं !

यह सही है कि हमने श्रीरामकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किया है। किन्तु जिन्होंने उनके पाद-पद्मों के नीचे रहकर अपने जीवन का गठन किया था उनमें से भी कुछ को शंका आ घेरती थी। एक बार श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र स्वामी ब्रह्मनन्द (राखाल महाराज, जो बाद में रामकृष्ण मठ एवं मिशन के प्रथम परमाध्यक्ष बने) को भी शंका हुई थी। इस शंका को निर्मूल करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने ४ अक्टूबर १९८५ को अमेरिका से स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित अपने पत्र में कुछ बड़े महत्व की बातें कही थीं। उन्होंने लिखा था - "दादा, माना कि श्रीरामकृष्णदेव एक नाचीज थे, माना कि उनके आश्रय में जाना बड़ी भूल का काम हुआ, परन्तु अब उपाय क्या है ? यही नहीं कि एक जन्म मुफ्त ही बीता, पर क्या मर्द की बात भी टलती है ? दुनिया भर में घूमकर देखा, उनके घर को छोड़ और सभी जगह मन में कुछ और मुख में कुछ और है।" इसी पत्र में आगे वे कहते हैं—'हाय रे अल्प विश्वास ! उनकी कृपा से "ब्रह्माण्ड गोष्पदायते" (ब्रह्माण्ड गोष्पद हो जाता है)। ··· बुद्ध, कृष्ण, ईसा पैदा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं है। और साक्षात् भगवान को देखकर भी तुम्हें कभी-कभी मतिभ्रम होता है ! तुमलोगों के जीवन को धिक्कार है ! मैं और क्या कहूँ ? देश-विदेश में नास्तिक पाखण्डी भी उनकी मूर्ति की पूजा करते हैं, और तुम लोगों को समय समय पर मतिभ्रम होता है ! तुम्हारे जैसे लाखों वे अपने निःश्वास से गढ़ लेंगे। तुम लोगों का जन्म धन्य है, कुल धन्य है, देश धन्य है कि उनके पैरों की धूलि मिली। ··· अरे पागल, परी जैसी औरतें, लाखों रुपये, ये सब मेरे लिए तुच्छ हो रहे हैं, यह क्या मेरे बल पर ?— या वे रक्षा कर रहे हैं इसलिए ?"

इसी पत्र में बड़े दृढ़ विश्वास से वे घोषणा करते हैं कि "उन पर (अर्थात् श्रीरामकृष्ण पर) जिसका विश्वास नहीं है और परमाराध्या माता जी (अर्थात् श्री माँ सारदा देवी) पर जिसकी भक्ति नहीं है उसका कहीं कुछ भी न होगा—यह सीधी भाषा में कह दिया, याद रखना।"

मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि भले ही हमारे मन में श्रीरामकृष्ण देव का दर्शन नहीं कर पाने से कुछ प्रश्न खड़े हो जायें किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि इसका एकमात्र कारण हमारे श्रद्धा-विश्वास में कमी है, हमारी दृष्टि में दोष है, आस्था और निष्ठा की अल्पता है, और हमारे अन्तर में आकुलता और आन्तरिकता और अनुराग का अभाव है।

एक बात पर हमें ध्यान देना चाहिए। हमारे जो आराध्य हैं, हमारे जो इष्ट हैं, हमारे जो वरेण्य हैं उनके अनुरूप हमें अपने को ढालना होगा। हमें तदनुरूप होना होगा, तत्सम होना होगा। श्रीरामकृष्ण क्या हैं? जरा सोचिए। यदि श्रीरामकृष्ण एक शरीर थे, तो वे एक देश और काल की सीमा में थे। उनका आदि था और अन्त भी। किन्तु मेरी समझ में श्रीरामकृष्ण कोई एक नाम नहीं हैं, कोई एक रूप नहीं हैं, कोई एक आकृति नहीं हैं। वे हैं दिव्यता की अनुभूति, आत्मदर्शन की आकृति, निराकार के आकार। श्रीरामकृष्ण एक भाव हैं। वे एक भाव मूर्ति हैं। वे सदा हैं, सर्वत्र हैं और सब में हैं। हमें इस भावमूर्ति को हृदयंगम करना होगा। १८९४ में अमेरिका से स्वामी शिवानन्द को लिखित अपने एक पत्र में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं - "मेरे प्यारे भाई, श्रीरामकृष्ण देव ईश्वर के अवतार थे, इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है, परन्तु वे कहते थे कि लोगों को स्वयं देखने दो, जबरदस्ती क्या कोई किसी को दिखा सकता है?" इसी पत्र में आगे वे कहते हैं—"His life is a searchlight of infinite power thrown upon the whole mass of Indian relegious thought. He was the living commentary to the Vedas and to their aim. He had lived in one life the whole cycle of the national relegious existence in India." (अर्थात् उनका जीवन भारतीय धार्मिक विचार के समूह पर एक अनन्त शक्ति का तीव्र प्रकाश है। वेदों के और उनके ध्येय के वे जीवित भाष्य हैं, भारत के जातीय धार्मिक जीवन का एक समग्र काल उन्होंने एक जीवन में पूरा कर दिया था।)

श्रीरामकृष्ण का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए एक आन्तरिकता चाहिए। अपनी आँखों में अनुराग-अंजन लगाकर ही हम उन्हें देख सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥

जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों में, वन और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत-सी खानों को देखते हैं। उसी प्रकार का कोई अंजन चाहिए। वह है प्रेम का अंजन। अनुराग का अंजन। श्रीरामकृष्ण के प्रति यही अनुराग अंजन नेत्रों में लगा लें तो हम उन्हें निश्चय ही देख सकते हैं। स्वयं भगवान श्रीरामकृष्ण ने अनुराग की महिमा बताते हुए कहा है - "बाघ जैसे दूसरे पशुओं को खा जाता है, वैसे ही 'अनुराग रूपी बाघ' काम-क्रोध आदि रिपुओं को खा जाता है। एक बार ईश्वर पर अनुराग होने से फिर काम-क्रोध आदि नहीं रह जाते।" वे फिर कहते हैं - "और है 'अनुराग अंजन'। श्रीमती (राधा) कहती हैं सखियो, मैं चारों ओर कृष्ण ही देखती हूँ। उनलोगों ने कहा - 'सखि, उसने आँखों में अनुराग-अंजन लगा लिया है, इसीलिए ऐसा देखती हो।" (श्रीरामकृष्ण वचनामृत, प्रथम भाग पृ० २७३-७४)।

तो एक यह सबल मार्ग है। फिर हम ऐसा भी देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण हैं अनन्त भावमूर्ति। हम किसी एक भाव को ग्रहण कर यदि साधना करें तो उसी भाव के अनुरूप हमारा आकार हो जायगा)। भावराज्य के अधिराज श्रीरामकृष्ण ने प्रायः अठारह भिन्न-भिन्न भावों से सिद्धि प्राप्त की थी। शैव, शाक्त, वैष्णव, साकार-निराकार तंत्र आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों की साधना उन्होंने की थी। राम, कृष्ण, हनुमान, शिव, सीता, राधा, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद सबका साक्षात्कार उन्होंने किया था। इनमें से किसी एक भाव को ग्रहण कर उसकी सिद्धि होने में या उसकी चरम अवस्था में पहुँचने में कितने ही जन्मों की चेष्टा की आवश्यकता होती है। किन्तु श्रीरामकृष्ण ने इतने भावों की चरमावस्था को एक ही जीवन

में प्राप्त किया था। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि आन्तरिकता होने पर श्रीरामकृष्ण का अभी और यहीं प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने जब १८९७ में रामकृष्ण मिशन समिति का गठन कर उसके उद्देश्य आदि का निर्धारण किया तो उनके गुरुभाई स्वामी योगानन्द को ऐसा लगा कि स्वामीजी की कार्य प्रणाली श्रीरामकृष्ण के भावानुरूप नहीं है। इसके उत्तर में स्वामीजी ने कहा था - "साधारण भक्तों ने श्रीगुरुदेव को जहाँ तक समझा है, वास्तव में हमारे प्रभु उतने ही नहीं हैं; वरन् वे अनन्त भावमय हैं। ब्रह्मज्ञान की मर्यादा हो भी, किन्तु प्रभु के अगम्य भावों की कुछ मर्यादा नहीं है। उनके कृपा-कटाक्ष से एक नयी, लाखों विवेकानन्द अभी उत्पन्न हो सकते हैं। पर ऐसा न करके वे अपनी ही इच्छा से मेरे द्वारा अर्थात् मुझ यन्त्रवत् बनाकर, यहाँ सब कार्य करा रहे हैं। इसमें मैं क्या करूँ ?" (विवेकानन्द जी के संग में : पृ० ७०-७१)

तात्पर्य यह है कि अपने कार्यों का श्रेय स्वयं पर न लेकर स्वामीजी श्रीरामकृष्ण पर समर्पित करते हैं। यह है निरहंकारिता और एकान्त समर्पण का चरमोत्कृष्ट भाव। हम अपने समस्त कार्यों को श्रीरामकृष्ण संचालित कार्य समझ यदि उन्हीं के पाद-पद्मों में उन कार्यों को समर्पित करते रहें तो हमारा चित्त शुद्ध हो जायगा और जब चित्त-शुद्धि हो जायगी तो भगवान श्रीरामकृष्ण का साक्षात्कार सहज ही हो जायगा। निर्मल, साफ दर्पण में ही जिस प्रकार हमारा बिम्ब प्रतिबिम्बित होता है उसी प्रकार निर्मल शुद्ध चित्त में ही हमारे आराध्य देव भासमान हो उठेंगे।

फिर हमें यह भी देखना होगा कि हमारे आराध्य के जो भाव हैं वे ही हमारे भाव भी हों। ऐसा जीवन ढालना चाहिए। श्रीरामकृष्ण की सत्य निष्ठा, सर्वधर्म की सहज स्वीकृति, सभी जीवों में शिव-दर्शन, काम-कांचन से विरक्ति, ईश्वर की प्राप्ति के लिए तीव्र आकुलता। इनमें से किसी भाव को हम अपने जीवन का आधार मान लें तो श्रीरामकृष्ण हममें प्रतिष्ठित हो सकेंगे। श्रीरामकृष्ण सत्य की खोज एक वैज्ञानिक की भाँति करते हैं। वे तब तक दम नहीं लेते जब तक एक विशेष भाव के उस छोर तक न पहुँच जायें जिसके आगे कोई गंतव्य नहीं हैं, कोई राह नहीं है। क्या हमें प्रभु की प्राप्ति के लिए वही संकल्प नहीं धारण करना चाहिए ? करना ही होगा।

हमें देखना होगा कि श्रीरामकृष्ण किसी सीमा में नहीं हैं। जहाँ कहीं सत्य का प्रकाश है, वहीं श्रीरामकृष्ण हैं। जहाँ कहीं प्रेम का प्रवाह और आनन्द की हाट फैली है, वहीं श्रीरामकृष्ण हैं। जहाँ कहीं निःस्वार्थ सेवा और धर्म-साधना का संगीत है वहीं श्रीरामकृष्ण विराजमान हैं। इतना ही क्यों ? हर जीव श्रीरामकृष्ण के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। हर स्वर में वही हैं, हर संगीत में वही हैं। दृष्टि का विस्तार ऐसा ही करना होगा। तब हमें अखिल जगत में भीतर-बाहर सर्वत्र श्रीरामकृष्ण के दर्शन होते रहेंगे। हमारे हर कर्म में उन्हीं का प्रकाश विकीर्ण होता रहेगा और श्रीरामकृष्ण में हम प्रतिष्ठित रहेंगे तथा हममें श्रीरामकृष्ण प्रतिष्ठित रहेंगे।

श्रीरामकृष्ण से मेरी आन्तरिक प्रार्थना है कि वे हमारी दृष्टि का ऐसा विस्तार करें कि उनके अनन्त भावों का प्रतिपल हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकें। जय श्रीरामकृष्ण !

●

आज के जीवन में श्रीरामकृष्ण के आदर्श की प्रासंगिकता

-- श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

[रामकृष्ण मठ एवं मिशन के वर्तमान परमाध्यक्ष पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने बेलुड़ मठ में ८ मई, १९८७ को जो प्रवचन दिया था वह बंगला पत्रिका उद्बोधन के चैत्र बंगाब्द १३९५ के अंक में प्रकाशित हुआ था। उसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। अनुवादिका हैं.. अजमेर, राजस्थान की डॉ० नन्दिता भार्गव।—स०]

प्रायः धर्म अथवा आध्यात्मिक विषयों के अनेक सूक्ष्म तत्वों पर परिचर्चा होती रहती है। ऐसा नहीं है कि द्वैत-अद्वैत-विशिष्टाद्वैत इत्यादि दार्शनिक मतों के विचार-विमर्श हमारे प्रतिदिन की जीवनचर्या में काम आते हों। मनुष्य का जीवन सामान्य दिनचर्या में ही व्यतीत हो जाता है। जन्म हुआ, माता-पिता ने पाल-पोस कर बड़ा किया, शिक्षा प्राप्त हुई, उसके बाद जीविकार्जन, विवाह, घर-संसार, यह सब होता रहता है। हम लोगों के पास आकर जो व्यक्ति अपने पारिवारिक जीवन की बातें सुनाते हैं, उनसे लगता है मानो यह जीवन ही दुःखमय है। हो सकता है कि परिवार की आर्थिक अवस्था ठीक है और किसी वस्तु का अभाव नहीं हो। देखने से लगता है कि सब कुछ शान्तिपूर्वक चल रहा है, किन्तु अपने अन्तः-करण में वे दुःखी हैं। बहुतों का जीवन ही इस प्रकार का है। कोई-कोई तो दुखों को सहते-सहते इतने अभ्यस्त हो जाते हैं, कि कष्ट का अनुभव ही नहीं कर पाते। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि दुःख से विचलित हो मानो टूट गये हैं। इन सब के जीवन में श्रीरामकृष्ण की प्रासंगिकता कितनी है उनका जीवन और आदर्श किसे किस प्रकार से सहायता कर पायेगा, यह सहसा कहा नहीं जा सकता।

विद्यासागर से मिलने श्रीरामकृष्ण स्वयं ही उनके घर पर गये हुए थे। एक लड़का पास ही बैठा था। ठाकुर वहां से हट कर बैठे। बाद में उन्होंने बताया, "कि वह लड़का विषय रस में डूबा हुआ है।" यहाँ ठाकुर दिखा रहे हैं, कि विषयी व्यक्तियों के निकट वे नहीं जाते। परन्तु उन्हीं सब के लिए तो उनका आगमन हुआ था। वैसे भी विषयी व्यक्ति उनके पास अधिक नहीं आते थे। भक्तों के साथ उनके बन्धु-बान्धवगण आते थे। भक्तगण ठाकुर के साथ बात करते रहते थे, और वे सब अधीर होते रहते थे कि कब लौटना होगा। अन्त में धैर्य टूट जाने पर कोई-कोई यह भी कहता कि तुम लोग बातें करो, हम नाव पर जाकर बैठ जाते हैं। इसका अर्थ है—उन्हें अच्छा नहीं लगता था। कोई-कोई तो चटाई बिछा कर सो जाता था। नींद जब टूटती तो पाता कि लौटने का समय हो गया है। ठाकुर के पास बहुत लोग आते थे। किन्तु उनसे लाभ-दायक उपदेश प्राप्त करेंगे या उनके सान्निध्य से जीवन को सुधारेंगे, ऐसा दृष्टान्त बहुत ही कम है। ठाकुर हँसी में कहते थे, नाटक देखने आया पर चटाई बिछा कर सो गया। (गाँवों में, अपनी-अपनी चटाई लेकर, लोग नाटक देखने आते थे।) नाटक समाप्त होने पर हो हल्ला होने लगा तो

नींद टूट गयी। जागने के बाद पूछने लगे, नाटक करने वाले आ गये हैं क्या ?

ठाकुर ने मनुष्यों को चार भागों में बाँटा बद्ध, मुमुक्षु मुक्त और नित्य। पहले जिनके बारे में बताया वे बद्ध जीव हैं। ये लोग कौन हैं? यह हम लोग ही तो हैं। स्वयं की समीक्षा करने पर हम समझ पायेंगे कि हमारा जीवन किस स्तर का है। भगवान की बातों में रुचि नहीं। विषयों की ओर प्रबल आकर्षण, कभी यदि साधु-संन्यासियों के पास जाते भी हैं तो कहते हैं कि पुत्र की बीमारी ठीक कर दीजिए। कन्या का एक अच्छी सी जगह विवाह हो जाय इत्यादि। सब कुछ घर परिवार के लिए। मानो इसके अतिरिक्त साधुओं से प्राप्त करने के लिए और कुछ नहीं है। ठाकुर के पास भी ऐसे ही कितने लोग प्रार्थना किया करते थे। ठाकुर ने तो दिखा दिया कि वे अलौकिक क्रिया-काण्ड नहीं करते। एक बार एक व्यक्ति ठाकुर के पास आकर बोला- सुना है कि यहाँ परमहंस दैव औषधि देते हैं। शंकित होकर ठाकुर ने कहा 'नहीं नहीं, यहाँ नहीं - वहाँ पंचवटी में।' साधुओं के पास अथवा भगवान के पास हम लोग यही सब मांगते हैं। मुँह से कहते हैं कि ज्ञान भक्ति चाहिए। परन्तु वास्तव में वह कितना-सा चाहते हैं? ऐसी अवस्था में ठाकुर क्या काम आ सकते हैं यह सोच विचार करने की बात है। साधारणतया हम लोग जो कुछ भी चाहते हैं, वह सब ठाकुर के पास नहीं है। धन दौलत नहीं है, वे बीमारियाँ ठीक नहीं कर सकते। मुकदमा जितवा देना, पुत्र कन्या को परीक्षा में पास करवा देने, नौकरी दिलवा देने कन्या के विवाह इत्यादि सांसारिक विषयों के लिए आशीर्वाद माँगने पर वे कहते थे, "माँ जानती हैं, मैं कुछ भी नहीं जानता।" इस प्रकार के ठाकुर का हमें क्या काम? इस कारण जब कोई देखता कि इतनी आशाओं से उनके पास आकर भी कुछ नहीं बन पाया तो कहता कि छोड़ो इसे--इतनी आशा लेकर आया था, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। कोई कोई कहता है - मेरे दीक्षा लेने के बाद से परिवार में नाना प्रकार की अशुभ घटनाएँ हो रही हैं, क्या यह सब दीक्षा के कारण ही हो रहा है? इसके उत्तर में मैं कहूँगा ठाकुर ने कहा है कि भगवान को प्राप्त करने के लिए ही उन्हें चाहना है। वे ही उद्देश्य हों, वे ही उपाय हों। यह दो, वह दो, यह सब आशाएँ नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार की मानसिकता को लेकर कितने लोग ठाकुर के पास जाते हैं? एक तरफ तो मुख से, "ठाकुर ठाकुर" कहते रहते हैं, दूसरी तरफ अलौकिक क्षमता सम्पन्न व्यक्तियों की शरण में जा पहुँचते हैं। मैं उन सब व्यक्तियों को दोषी नहीं बतला रहा हूँ मैं तो केवल मनुष्यों की वासना की बात कर रहा हूँ।

एक बार मैं एक स्थान पर गया था। एक व्यक्ति ने मुझ से पूछा, 'क्या आपको हाथ देखना आता है? मैंने कहा, "नहीं"। 'तो क्या आप जन्मपत्री देख लेते हैं?"--"नहीं" —"औषधि देते हैं?" —"नहीं" "—तो फिर आप क्या जानते हैं?" मैंने भी सोचा सच ही तो है-- मैं क्या जानता हूँ? इन सब लोगों की आशाओं को पूर्ण करने के लिए मेरे पास कुछ भी तो नहीं है! फिर भी इन लोगों को श्रीरामकृष्ण अच्छे लगते हैं। क्यों अच्छे लगते हैं? अच्छे लगने का कारण -इतने सरल, भोले-भाले, सभी के दुःख में दुःखी मनुष्य कितने मिलते हैं? वे सदा ही त्याग और वैराग्य के विषय में बात किया करते थे। वे ईश्वर के सिवा और कुछ जानते ही नहीं थे। किन्तु यदि कोई अपनी सन्तान को खोने के पश्चात् उनके पास आकर अपने दुखड़े को कहता तो उनकी आँखों में अश्रु आ जाते। इन्हीं ठाकुर को तो हम चाहते हैं। हम उन्हें ही चाहते हैं जो हमारे दुःख में उदासीन न रह कर स्वयं दुःखी होवें। समस्त दुःखों से वे हमें तत्क्षण ही मुक्ति न दिला सकते हों, पर उनमें हम एक इस प्रकार के हमदर्द को

पाते हैं जो हमारे दुःखों को समझते हैं।

यह बात तो समझ में आ गयी। परन्तु ऐसे जो ठाकुर हैं वे हमारे घर संसार में कितना काम आते हैं? उन्होंने जैसी कठोर साधना की, वैसी तो हम लोग नहीं कर सकते, परन्तु उन्होंने जैसा कहा है कि एक हाथ से भगवान को पकड़ो और एक हाथ से गृहस्थी को सम्भालो, इसे तो चेष्टा कर देखा जा सकता है। हमलोगों के लिए दोनों हाथों से ही उन्हें पकड़े रहना सम्भव नहीं है। ठाकुर के उपदेशों में वैराग्य की अनेक बातें हैं। परन्तु उसका अर्थ यह नहीं कि सभी का संसार त्यागना होगा। वचनामृत के संग्रह कर्त्ता मास्टर महाशय की भी यही समस्या थी। उन्होंने प्रश्न किया कि यदि पत्नी के साथ मतभेद हो जाय तो क्या करना चाहिए। ठाकुर ने कहा था कि ऐसा होने पर उसे बार-बार समझा कर अपने मत की ओर लाना चाहिए। मास्टर महाशय का अब प्रश्न था—यदि वह नहीं समझे, यदि इससे साधना के पथ में बिघ्न आये? ठाकुर ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया कि फिर तो उसे त्याग देना पड़ेगा। अब मास्टर महाशय बहुत चिन्तित हुए कि कैसे इतना अधिक बढ़ना होगा। तब ठाकुर ने कहा, "अरे, जो अंतःकरण से भगवान को पुकारता है-वे सब कुछ उसके अनुकूल कर देते हैं।' मास्टर महाशय बतलाते हैं कि ऐसा सुन कर मानो उनकी चिन्ताग्नि बुझ गयी। ठाकुर ने कहा है कि साधन करना होगा। परन्तु जो कर नहीं पा रहा है उसे उन्होंने कहा कि जितना हो सके उतना ही करो। उन्होंने गिरीश को कहा कि और कुछ नहीं कर सको तो सुबह और सध्या उनका नाम ही ले लेना। यह सोच गिरीश चिन्तित हुए कि कह तो दूँगा कि करूँगा, किन्तु शायद कर न पाऊँ। ठाकुर ने कहा, कि अच्छा कम-से-कम दिनान्त में एक बार ही नाम स्मरण कर लेना। गिरीश इस पर भी नीरव रहे। वे कहा करते थे कि कितने ही दिन ऐसा हुआ कि कार्यवश मन में एक बार भी ईश्वर की बात नहीं आयी। इस कारण यह प्रतिश्रुति कैसे दूँ कि दिनान्त में एक बार ईश्वर का नाम स्मरण करूँगा। तब ठाकुर ने कहा कि यदि यह भी नहीं कर सको हो तो मुझ पर ही छोड़ दो। गिरीश कहते थे कि इस बात पर मैं निश्चिन्त हुआ। यदि ठाकुर हम लोगों का भार ग्रहण कर लें तो हम भी बच जायँ। हम तो स्वयं का भार ही वहन करने में असमर्थ हैं। हम लोग भगवान को पुकार नहीं सकते। उन्हें पकड़ नहीं पाते हैं, वे ही यदि हमें पकड़ कर ले जायें तो तब ही कुछ हो सकता है। परन्तु गिरीश को ठाकुर ने जिस प्रकार कहा, वैसा अन्य किसी को नहीं कहा था। दूसरों को वे कहते थे कि यहाँ आकर सब कहते हैं कि यह कर दो, पर स्वयं कोई कुछ करना नहीं चाहते हैं अर्थात् वैसा बढ़ावा वे किसी को नहीं दे रहे हैं कि तुम लोगों का समस्त भार मैंने ले लिया, तुम लोगों को कुछ करना नहीं होगा। वे कहते थे, मैंने सोलह आने किया है. तुम लोग एक आना भर ही करो अर्थात् कुछ तो करो, पर वह "कुछ" कितना होना चाहिए, यह उन्होंने साफ-साफ नहीं बताया। हम लोग यही सोचते हैं कि देखें कितना कुछ कर सकते हैं। ऐसे भी व्यक्ति हैं जो दीक्षा लेने के पश्चात् आकर कहते हैं कि मन्त्र भूल गया हूँ। इसका अर्थ है—मन्त्र के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा होगा। ऐसा भी होता है—इसमें आश्चर्य करने को कोई बात नहीं, तो फिर ठाकुर की हमें आवश्यकता क्या है? कभी-कभी लगता है कि उनकी आवश्यकता अवश्य है। जब चारों ओर से आघात मिलता है तो उनके प्रयोजन को समझे बिना कोई उपाय नहीं रह जाता। उस समय ही तो हम लोग ठाकुर से याचना करते हैं कि शायद वे कोई उपाय बतला दें।

ठाकुर तो मार्ग बता देने को प्रस्तुत ही हैं। उन्होंने तीव्र तथा स्पष्ट भाषा में बद्ध जीव का वर्णन करके कहा है कि जिस प्रकार मछली मुँह

में पानी भरकर कीचड़ में स्वयं को छिपाये पड़ी रहती है और सोचती है कि बहुत ठीक हूँ, वह यह नहीं जानती कि मछुआरा किसी भी क्षण पानी से उसे निकाल बाहर करेगा। वैसे ही हम लोग भी हैं—समझ रहे हैं, देख रहे हैं, फिर भी सचेत नहीं होते। बद्ध जीव का लक्षण यही तो है। एक ने पूछा - बद्ध जीव का क्या कोई रास्ता नहीं है ? ठाकुर ने झटपट कहा, क्यों नहीं होगा ? अवश्य है। ठाकुर के पास निराशा की बात ही नहीं थी। वह कौन सा रास्ता है ? वह रास्ता है—भगवान का नाम लेना, साधु संग करना, कभी-कभी एकान्त में रह कर ईश्वर की आराधना करना। यह सब करते-करते संसार बन्धन धीरे-धीरे ढीला पड़ जाता है। हठात् खींचने से कुछ न होगा। इस कारण ही इसी प्रकार के लोगों के लिए ही उन्होंने कहा - तत्काल नहीं—धीरे-धीरे होगा।

काशीपुर में जब ठाकुर "कल्पतरु" हुए थे, (सभी का उद्धार करने के लिए) तब अपना भण्डार मानो उन्होंने खोल दिया था। उस समय भी एक व्यक्ति से उन्होंने कहा था कि "तुम्हारा उद्धार पीछे होगा।" अर्थात् समय यदि अनुकूल न हो तो मानो कल्पतरु भी फल नहीं देता। परन्तु "नहीं होगा" ऐसा उन्होंने किसी को भी नहीं कहा। हम उनसे यह आशाप्रद वाणी सुनते हैं कि सभी का उद्धार होगा। उन्होंने आश्वासन देकर सभी को कहा "ईश्वर का नाम लेत-लेते अज्ञान रूपी मोह धीरे-धीरे चला जायेगा।"

इसके लिए उन्होंने तीन उपाय बतलाये। नाम भजन, साधुसंग और कभी-कभी एकान्त वास। एकान्त वास का अर्थ यह नहीं है कि आबहवा बदलने जाया जाये। इसका अर्थ है निर्जन स्थान में जाकर भगवत् चिन्तन। इस प्रकार से अज्ञान का बन्धन जरा ढीला हो जाता है। साधु-संग का अर्थ यह नहीं है कि साधुओं के साथ रहो इसका अर्थ है कि साधुओं के आदर्श को ग्रहण करो। जिनके निकट जाने से भगवान के विषय में जानने की चेतना जागृत होती है, सत चिन्ताएँ मन में आती हैं उन्हें ही साधु कहते हैं। इस प्रसंग में एक घटना याद आ गयी। "उद्बोधन" में एक आगन्तुक ने आकर कहा कि वह साधु-संग करने आया है। यह सुन सारदानन्द महाराज ने उत्तर दिया, "जब ठाकुर दक्षिणेश्वर में थे तो काली मन्दिर के रसोइया, नौकर-चाकर चौबीस घण्टे उनके साथ रहते, आस पड़ोस के लोग भी प्रायः रोज ही आया-जाया करते। वर्षों ऐसा ही चलता रहा। परन्तु ऐसा तो सुनने में नहीं आया कि उनके जीवन में कोई परिवर्तन आया हो। साधु के निकट जाने से ही सत्संग नहीं होता। साधु के जीवन से जो शिक्षा मिलती है उसे ग्रहण करने के लिए थोड़ा सा आग्रह रहना चाहिए। वरना उस संग से कोई लाभ नहीं होता।

निर्जन वास का अर्थ केवल घर के बाहर रहना ही नहीं है, अपितु चेतना का उदय हो तथा भगवत् चिन्तन हो सके, इस प्रकार से समय व्यतीत करना। निर्जन अरण्य में शेर-भालू भी तो रहते हैं, उनमें कोई परिवर्तन आता है क्या ? जंगलों में आदिवासी रहते हैं। हिमालय, जिसको कि देवताओं की आत्मा ही कहा जाता है, और जो कितने ही मुनि-ऋषियों का तपस्या-क्षेत्र रहा है, वहाँ जो पहाड़ी लोग रहते हैं, उनकी जीवन-चर्या भी एक बँधे हुए नियम से चलती रहती है। इस कारण स्थान-माहात्म्य या बाहरी आचार किसी काम का नहीं। ठाकुर कहते थे कि "इतना जप तो कर रहे हो, परन्तु यह विश्वास नहीं है कि उनके नाम लेने से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है।" ठाकुर ने कहा कि ईश्वर का नाम-कीर्तन किया करो, पर कीर्तन करने वालों की जो मण्डली होती है उनमें से कितनों की धार्मिक जीवन में प्रगति होती है ? जिनकी चेतना जागृह नहीं होती, वे लोग मानो कलछी की भांति

है। कलछी के द्वारा खीर आदि स्वादिष्ट भोजन परोसा जाता है, पर इससे कलछी को क्या कुछ मिल जाता है ? एक व्यक्ति धर्मवक्ता के नाम से प्रसिद्ध थे। एक दिन वे अपने मन की बात बोल पड़े कि सभी को धर्म की बातें सुनाता हूँ, लोग भी प्रशंसा करते हैं, पर मेरा अविश्वास समाप्त नहीं होता। दूसरे को बता रहे हैं पर अपना अविश्वास दूर नहीं हो रहा है। ठाकुर ने भागवत के पण्डित की बात कही है। बहुत बड़ पण्डित। रोज राजा के पास जाकर भागवत की सुबोध व्याख्या करके अन्त में कहते थे, "राजा, समझ गये क्या ?" राजा भी कहते थे, "पहले आप ही समझ लीजिए।" पण्डित सोचते रहे कि शायद राजा मेरी व्याख्याओं से संतुष्ट नहीं है। दूसरे दिन और अधिक सोच-विचार कर सुबोधगम्य व्याख्या करते। अन्त में फिर बोले, "समझ गये ?" राजा ने कहा, "तुम स्वय तो समझा।" इस प्रकार कई दिन तक सुनते-सुनते एक दिन पण्डित ने सोचा कि मैं रोज ही राजा को भागवत समझा रहा हूँ जिससे कि भोग की सामग्री खरीद पाऊँ। भागवत में तो बताया है कि सब कुछ छोड़ कर भगवान की शरण लो। तो फिर मैं भागवत को क्या समझ रहा हूँ ! तब इस पण्डित में वराग्य का उदय हुआ। राजा को समाचार भेजा। 'राजा अब मैंने समझा है।" पण्डित घर-बार छोड़ कर चला गया। ये तो हैं एकदम पराकष्ठा की बातें। हम लोग क्या इस प्रकार से संसार को त्याग कर चल जायेंगे।

ठाकुर ने कहा कि संसार में रहते हुए ही ईश्वर को जीवन के साथ ओतप्रोत भाव से ग्रहण कर चलना होगा। नहीं तो मुँह से उनकी बातें कर रहे हैं और जीवन जैसा है उसी धारा में बह रहा है, इससे कोई लाभ नहीं। ठाकुर कहते हैं जो कहने को था कह दिया, तुम जैसा उचित समझो, ग्रहण करो। सत्यवादी युधिष्ठिर नहीं बन सकते हो तो कम-से-कम इस चेष्टा से भी कुछ आगे बढ़ जाओगे। अर्थात् मन पर नियंत्रण रखने पर ही जीवन धीरे-धीरे उन्नत हो जायेगा।

प्रतिदिन के जीवन में हम लोग जो कुछ भी कर रहे हैं उसे ठाकुर की शिक्षा के साथ मिलान कर देखते रहना होगा कि कहाँ पर और कितना पार्थक्य है। उनके उपदेशों के अनुरूप जीवन को कितना चलाने की चेष्टा कर रहे हैं। चेष्टा करते रहने से धीरे-धीरे परिवर्तन आ जायेगा। सम्पूर्ण रूप से सम्भव नहीं भी हो, परन्तु थोड़ी बहुत चेष्टा तो सभी कर सकते हैं। यदि उन्हें हम अपने जीवन का ध्रुवतारा स्वीकार करलें तो उनके जीवन के आलोक द्वारा हम यह समझ पायेंगे कि हमारा कर्त्तव्य क्या है और क्या नहीं। यह सब ठाकुर के भक्तों को विशेष रूप से समझना और उसका चिन्तन करना होगा। सिर्फ गृहस्थों को ही नहीं, परन्तु साधु तथा गृहस्थ सभी को चिन्तन करना होगा। कारण हम कोई भी पूर्णता को प्राप्त नहीं हैं। उनके चरण कमलों का अनुसरण करके चलने का सकल्प दृढ़ हो या न हो - यदि किंचित मात्र भी है, तो उसी से धीरे-धीरे आगे बढ़ने की चेष्टा करनी होगी। धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण हमारे जीवन में प्रतिष्ठित होंगे। उनके आदर्श में अपने को गढ़ना होगा। ठाकुर ने कहा है—कि प्रतिमान तो तैयार ही है, उसमें अपने आप को गढ़ लो। वे ही प्रतिमान हैं। वे कहा करते थे कि खाना बना हुआ रखा है। भात परोस दिया—खाने को बैठ जाओ। उन्होंने दिशा दिया कि धर्म जीवन कहते किसे हैं। किसी सन्देह का अवकाश ही नहीं रखा। केवल बुद्धि की सहायता से विषय को समझ लेना ही पर्याप्त नहीं होगा। उसे जीवन में उतारना होगा। ठाकुर के चरण चिह्नों का अनुसरण कर चलने से वे कृपा के वशीभूत हो पथ की बाधाओं को दूर कर आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करेंगे। वे हम लोगों की प्रार्थनाएँ सुनेंगे। हम लोगों के लिए केवल मात्र किंचित आंतरिकता

की आवश्यकता है। हमारी प्रथम प्रार्थना यह होनी चाहिए कि हम निष्कपट भाव से उनके भक्त हो सकें। द्वितीय प्रार्थना यह हो कि हमारे जीवन में वे नित्य ही प्रतिष्ठित रहें। सर्वदा ही ठाकुर को ही लक्ष्य में रख कर चलना होगा।

"तोमारेई कोरियाछि, जीवनेर ध्रुवतारा,
ऐ समुद्रे आर कभू हवो नाको पथहारा"

"तुम्हें ही मैंने अपने जीवन का ध्रुव तारा मान लिया है, इस कारण, इस समुद्र में अब कभी भी पथ भ्रष्ट नहीं होऊँगा।

हम अपने आपको निर्बल सोचते हैं, किन्तु स्मरण रखना होगा कि उनकी शक्ति हमारे अन्दर है। स्वामीजी ने कहा है "रामकृष्ण दासा वयम्" हम लोग श्रीरामकृष्ण के दास हैं। हमारी निर्बलता कैसी? कूर्मस्तारक चर्वणम त्रिभुवन-मूत्पाटयामो बलात"— हम लोग तारा, ग्रह, नक्षत्र को चबा कर खा जायेंगे, त्रिभुवन को उखाड़ फेंकेंगे। इतनी शक्ति हममें है। यह उन्हीं की शक्ति है।

यदि हृदय द्वार खोल कर रखें तो वे अपनी शक्ति, ऐश्वर्य तथा आध्यात्मिक सम्पदा से हमें परिपूर्ण कर देंगे। उनसे यही प्रार्थना है कि वे हमें साहस तथा प्रेरणा प्रदान करते रहें।

●

नरदेव-श्रीरामकृष्ण (६)

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

कर्मकलेवरमद्भुत चेष्टम्

स्वामी विवेकानन्द द्वारा श्रीरामकृष्ण के लिए प्रयुक्त विशेषणों में यह अन्तिम विशेषण महान कर्मयोगी श्रीरामकृष्ण की असीम कर्मठता को प्रकट करता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि स्वामी विवेकानन्द ने अपने चार योगों का सिद्धान्त एवं अन्य सभी दार्शनिक सिद्धान्त श्रीरामकृष्ण से ही सीखे थे। ऐसा नहीं है कि श्रीरामकृष्ण ने उन्हें हाथ पकड़ कर ये बातें सिखायी। स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के जीवन को निकट से, गहराई से देखा और उनके अद्भुत जीवन व चरित्र को अपने संदेश के रूप में लिपिबद्ध किया। स्वामीजी की वाणी श्रीरामकृष्ण के जीवन का भाष्य, व्याख्या है। अतः अगर हम श्रीरामकृष्ण को समझना चाहते हैं तो कर्म योग के विषय में भी स्वामीजी द्वारा प्रस्तुत रूपरेखा के माध्यम से समझना उपयुक्त होगा।

निष्काम कर्म को सामान्यतः ज्ञान योग की पूर्व भूमिका और चित्त शुद्धि के उपाय के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। एक मत के अनुसार कर्म कभी भी मुक्ति का कारण नहीं हो सकता। दूसरी ओर पूर्व मीमांसा के अनुसार कर्म ही सर्वोपरि है। कर्म और ज्ञान के निरंन्तर से चले आ रहे झगड़े को निपटाने के विभिन्न प्रयास होते रहे हैं; जिनका संकेत हम ईशावास्योपनिषद् तथा गीता में पाते हैं।

इस दिशा में स्वामी विवेकानन्द का मौलिक योगदान रहा है। कर्म को चित्तशुद्धि का उपाय स्वीकार करते हुए स्वामीजी कहते हैं कि प्रत्येक

अनुभव हमारे चित्त पर पड़े आवरण को हटाकर अन्तर्निहित ज्ञान को प्रकट करता है। प्रत्येक शुभाशुभ कर्म हमारे चित्त पर एक छाप छोड़ जाता है, जो हमें पुनः उस कार्य को करने की प्रेरणा देता है। इस तरह आदतों और आदतों से चरित्र का निर्माण होता है। इसमें इच्छा शक्ति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिस व्यक्ति की इच्छा जितनी बलवती होगी वह उतना ही महान होगा। मानव एक केन्द्र है और संसार की सभी शक्तियाँ इसपर आघात सी करती हैं। इच्छा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति इन्हें एक विशेष दिशा प्रदान करने में समर्थ होता है। प्रेम, सत्य निःस्वार्थता उच्चतम आदर्श इसलिए हैं कि इनके द्वारा इच्छा शक्ति की महानतम अभिव्यक्ति होती है। निःस्वार्थता तथा संयम से महान इच्छा-शक्ति संचित की जा सकती है। बुद्ध, ईसा आदि ऐसी ही महान इच्छा शक्ति सम्पन्न कर्मयोगी थे।

कोई कर्म छोटा नहीं होता, क्योंकि जिस प्रकार एक बड़ी लहर छोटी-छोटी असंख्य लहरों से मिलकर बनती है, उसी तरह एक महान कर्म छोटे-छोटे असंख्य कर्मों की समष्टि होता है। अतः यदि किसी व्यक्ति की महानता का अंकन करना है तो उसके बड़े कर्मों को नहीं, दिन-प्रति दिन किये जा रहे छोटे-छोटे कर्मों को देखो। जिस भाव, एकाग्रता एवं प्रेरणा से वह कार्य किया जा रहा है, वह उस व्यक्ति की महानता को प्रकट करेगा।

कर्म अकर्म की समस्या का भी स्वामीजी ने एक मौलिक समाधान प्रस्तुत किया है। धर्म के लिए तीव्र एकाग्रता, एवं प्रबल इच्छाशक्ति आवश्यक है। लेकिन उसके साथ ही साथ पूर्ण अनासक्ति भी उतनी ही आवश्यक है। हममें ऐसी एकाग्रता की क्षमता होनी चाहिए कि किसी कार्य में अपने पूरे मन को लगा सकें। लेकिन आवश्यकता होने पर उसी मन को इच्छा मात्र से पूरी तरह असक्ति और एकाग्रता के केन्द्र से हटा सकें। स्वामीजी के अनुसार यही कर्मयोग का रहस्य है।

एकाग्रता के अभाव तथा फलासक्ति के कारण सामान्यतः हम उपयुक्त आदर्शानुसार कर्म नहीं कर पाते। या तो फलासक्ति के कारण शेखचिल्ली की तरह दिवा स्वप्न देखते रहते हैं, या फिर उत्तरदायित्व के अभाव में पलायनवादी बन जाते हैं। कभी-कभी हम दिशा हीन, लक्ष्य हीन व्यर्थ के कर्मों में अपनी शक्ति क्षय कर देते हैं। एक पागल प्रतिदिन इधर उधर से मिट्टी के टूटे बर्तन इकट्ठा करता और फिर एक लकड़ी से मार-मार कर उनके टुकड़े किया करता। अन्त में थक कर चूर हो जाता। कभी-कभी हमारी चेष्टाएँ भी इसी तरह लक्ष्यहीन हुआ करती हैं। अन्य लोगों के जीवन में लौकिक सफलता के रूप में एक आपात् लक्ष्य होता है, लेकिन उसमें आसक्ति के कारण वे हर्ष और शोक, सुख और दुखः, के द्वारा उद्वेलित होते रहते हैं। स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण जैसे महापुरुष हमें इन समस्याओं का समाधान तथा इन खतरों से बचकर सच्चे कर्मयोग का माग बताते हैं।

कर्मकलेवरम्—

श्रीरामकृष्ण के लिए प्रयुक्त इस विशेषण के दो अर्थ हो सकते हैं: (१) जिनका शरीर शुभ कर्मों से निर्मित हुआ, या (२) जो निरन्तर जगत् कल्याण के कर्मों में लगे रहे थे—जिनकी देह का उद्देश्य लोक हित के कर्मों में लगा रहना ही था। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, हमारे सभी छोटे मोटे कार्य, विचार, भावनाएँ आदि मन पर एक छाप छोड़ जाते हैं। पुनः पुनः दुहराने पर ये ही आदतों का, संस्कारों का रूप लेकर अन्त में हमारे चरित्रों का निर्माण करते हैं। श्रीरामकृष्ण में यह प्रक्रिया अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी थी। कुछ उदाहरणों से इसे समझा जा सकता है। श्रीरामकृष्ण ने जब कांचन त्याग का अभ्यास किया था, तब वे अपने मन को प्रबोधित करने के

लिए एक हाथ में रुपया और एक हाथ में मिट्टी लेकर गंगा किनारे खड़े होकर कहते थे "रे मन, यह रुपया है, इससे सांसारिक सुख वैभवादि मिलते हैं लेकिन इससे ईश्वर नहीं मिलते इसलिए यह मिट्टी के समान है। मिट्टी रुपया, रुपया, मिट्टी।" ऐसा कहकर वे दोनों को एक साथ गंगा में फेंक देते थे। उनका शुद्ध, सात्विक एकाग्र मन, इस विचार को तत्काल ग्रहण कर उस भाव में रंजित हो जाता था। यही नहीं, उनका मन इतना अधिक उस भाव के साथ एकरूप हो जाता था कि उसका प्रभाव स्नायुओं तक पर पड़ता था। परिणाम स्वरूप वे भूलकर भी रुपये अथवा किसी धातु को स्पर्श नहीं कर पाते थे। अगर अनजाने में भी धातु का स्पर्श होता तो उनके हाथ में बिच्छू काटने की-सी पीड़ा होती थी। सत्य वचन अपरिग्रह आदि में उनकी ऐसी दृढ़ता थी कि अनजाने में भी वे उनके विपरीत कार्य नहीं कर सकते थे। उनका मन ही नहीं, उनका शरीर भी विपरीत कार्य होने पर विद्रोह कर बैठता था। जब मन तथा इन्द्रियाँ भी इस तरह से सध जायें कि व्यक्ति अन जाने में भी, भय या प्रलोभन से भी अनुचित कार्य न करे, आदर्श के विरुद्ध न जाये, तभी हम कह सकते हैं कि वह चरित्र में दृढ़ प्रतिष्ठ अथवा स्थितप्रज्ञ है।

श्रीरामकृष्ण प्रत्येक कार्य को पूर्ण एकाग्रता एवं समग्रता के साथ करते थे। वे छोटी-छोटी बातों को भी अत्यधिक महत्व देते थे। कर्म प्रधान तन्त्र साधना के सभी अंगों की उन्होंने बारीकी से पालन कर उनकी साधना की थी। शास्त्रों में कथन है कि अभिमानादि समस्त पाशों को त्याग कर भगवन् का चिन्तन करना चाहिए। इस भाव को दृढ़ करने के लिए वे ध्यान करते समय यज्ञोपवीत और वस्त्र उतार कर ध्यान में बैठते थे। वे मजाक में भी झूठ नहीं बोलते थे, और अपने शिष्यों को भी ऐसा करने से विरत होने को कहते थे। अगर मुँह से कोई बात निकल जाती, कि मैं अमुक कार्य करूँगा तो उसकी सत्यता की रक्षा के लिए वे वह कार्य करते ही थे।

कर्म में वे स्वच्छता एवं सुश्रृंखला-प्रिय थे। स्नान का जल गंदी जगह न रखा हो, जो वस्तु जिस स्थान पर रहनी चाहिए, काम हो जाने के बाद उसे उसी स्थान पर रखना चाहिए, किसी वस्तु को एक स्थान पर रखकर उसे भूलकर वहीं छोड़ नहीं आना चाहिए आदि उनके उपदेश उनकी कर्म कुशलता के प्रदर्शक हैं।

उपर्युक्त उदाहरण तीव्र एकाग्रता एवं लगन से किये गये छोटे-छोटे कार्यों के द्वारा श्रीरामकृष्ण के कलेवर अथवा शरीर के निर्माण के दृष्टान्त हैं। कर्म कलेवर का दूसरा अर्थ है, जगत्-कल्याण के लिए सतत कर्मशील रहना। श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव ही जगत कल्याण के लिए हुआ था। उनकी साधना एवं सिद्धावस्था के बाद का जीवन, सभी लोक कल्याण के लिए ही थे। स्वामी सारदानन्दजी ने गुरुभाव में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण द्वारा किये गये विभिन्न कार्यों को सात श्रेणियों में विभक्त किया है जिनका उल्लेख अभी किया जायेगा।

कर्मयोग का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, आसक्ति और अनासक्ति, एकाग्रता और निर्लिप्तता का समन्वय। श्रीरामकृष्ण में यह अद्भुत मात्रा में विद्यमान था। जब वे जिस साधना को करते थे, तब अपना पूरा मन उसी में डाल देते थे। अन्य सारी बातें उनके मन से दूर हो जाती थीं। इस्लाम आदि की साधना के समय उन्होंने ऐसा नहीं किया कि इस्लाम की साधना भी करते रहें और भव तारिणी मां के मन्दिर में भी जाते रहे हों। नहीं, इस्लाम की साधना के समय मां जगदम्बा जो उनको इतनी प्यारी थीं तथा जिनके ध्यान में वे निरन्तर मग्न रहते थे, उनकी स्मृति तक उनके मन में नहीं उठती थी, मन्दिर में जाना तो दूर रहा। चित्त की यह तीव्र एकाग्रता उनके दैनन्दिन जीवन

में भी परिलक्षित होती थी। अगर कलकत्ता जाना हो तो वे गाड़ी आते ही दौड़कर उसमें बैठ जाते थे, जाने के लिए व्यग्र हो उठते थे। यह व्यग्रता अधैर्य का लक्षण नहीं, बल्कि चित्त के उस विशेष गुण का लक्षण है, जिसके कारण मन जिस चिन्ता में लगता था, उससे पूरी तरह एकरूप हो जाया करता था। इसके साथ ही वे इच्छा मात्र से अपने मन को एक विषय विशेष से हटाकर समाधिस्थ कर सकते थे।

जब किसी ने उन्हें कहा कि आप इन युवक-भक्तों के लिए इतना क्यों सोचते हैं, आपको तो निरंतर भगवान के चिन्तन में लगना चाहिए, तो उसकी बात मानते ही श्रीरामकृष्ण का मन संसार का चिन्तन त्याग कर ऐसी गहरी समाधि में लीन हो गया कि लोगों को भय होने लगा कि शायद वे पुनः बाह्यावस्था को प्राप्त ही न हों। उनकी तीव्र एकाग्रता ही उनकी व्याकुलता का रूप लेती थी। पहले वे माँ जगदम्बा के दर्शनों के लिए व्याकुल रहते थे, तो बाद में अपने शुद्ध, आन्तरग युवक शिष्यों के लिए। यहाँ भी हम आसक्ति व अनासक्ति का अद्भुत समन्वय देखते हैं। तात्पर्य यह कि उनका मन मिट्टी के एक गीले लोंदे की तरह था जिसे किसी भी सतह पर स्वेच्छा से लगाया और वहाँ से निकाला भी जा सकता है।

अद्भुतचेष्टम् -

श्रीरामकृष्ण की (१) अद्भुत साधन चेष्टा थी तथा (२) अद्भुत धर्म संस्थापन चेष्टा भी थी। चेष्टा का अर्थ है प्रयास। उपर्युक्त दोनों प्रयासों में श्रीरामकृष्ण को सफलता भी प्राप्त हुई थी। लेकिन केवल चेष्टा शब्द का प्रयोग सफलता से अधिक प्रयास को महत्व देता है। अन्य किसी पूर्व अवतार में ऐसी कठोर दीर्घ काल व्यापी एवं व्यवधान रहित निरन्तर साधन चेष्टा दिखाई नहीं देती। एक के बाद एक-एक, विभिन्न धर्मों की नाना साधनाप्रणालियों का अनुष्ठान उनके सभी अंग प्रत्यंगों सहित करना, अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना है। उसके बाद सिद्धावस्था प्राप्त करने पर श्रीरामकृष्ण ने लोक कल्याण के लिए भी महान् प्रयत्न किये। स्वामी सारदानन्दजी ने 'श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग" में उन कार्यों को सात श्रेणियों में विभक्त किया है : वे हैं (१) माँ सारदा की शिक्षा जिससे वे जगत कल्याण का कार्य कर सकें। (२) कलकत्ता के नाना धर्माचार्यों से मिलकर उनके जीवन की अपूर्णता दूर कर उन्हें पूर्णता प्रदान करना। सामान्य जनसमुदाय की आध्यात्मिक पिपासा शान्त करना। (४) अपने शिष्यों का चरित्र निर्माण करना तथा उन्हें अन्तरंग एवं बहिरंग इन दो विभागों में बाँटना। (५) एक नये धर्म संघ की स्थापना करना। (६) कलकत्ता में गृहस्थ भक्तों के घर पर जाकर उन्हें धर्मोपदेश देकर उनमें आध्यात्मिक जागरण करना तथा सभी को प्रेम सूत्र में बाँधना। (७) विभिन्न धर्म संप्रदायों के साधकों की सहायता कर सभी धर्म संप्रदायों में प्राण संचार करना।

बाह्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि राम, कृष्णादि पूर्वावतारों की तुलना में श्रीरामकृष्ण के धर्म संस्थापन की चेष्टएँ कम थीं। वस्तुतः श्रीरामकृष्ण ने जिस स्तर पर कार्य किया वह उनके पूर्ववर्ती महापुरुषों के स्तर से भिन्न था। श्रीरामकृष्ण का सम्पूर्ण प्रयास मानव के भीतर निहित काम-क्रोधादि रिपुओं को नष्ट करने की ओर था। उन्होंने भले ही किसी बाहरी दानव या असुर का संहार न किया हो लेकिन उनमें मनुष्य के मन को इच्छानुसार इस तरह गढ़ने की क्षमता थी जिस तरह गीली मिट्टी के खिलौने गढ़े जाते हैं। लाटू जैसे संस्कारहीन ग्रामीण बालक-सेवक तथा गिरीशचन्द्र घोष जैसे पापलिप्त व्यक्ति, तक को उन्होंने अपने अमोघ स्पर्श से सन्त बना दिया था।

उपसंहार—चार योग एवं उनके दोषों का निराकरण

उपर्युक्त विश्लेषण के माध्यम से हमने

श्रीरामकृष्ण में चारों योगों के पूर्ण विकास को समझने का प्रयत्न किया है। इन चारों योगों के साथ कुछ समस्याएँ तथा खतरे रहते हैं। उदाहरण के लिए ज्ञान योग को ही ले लें। ज्ञानयोग विवेक और विचार का मार्ग है, लेकिन इसके शुष्क ज्ञान में, छोटे बुद्धिवाद में पर्यवसित हो जाने की संभावना है। इसके विकृत रूप में, विशेष कर वैराग्य के अभाव में यह भोगवाद का रूप ले सकता है। ज्ञान की आड़ में व्यक्ति विषय-भोग करता हुआ स्वयं को तथा दूसरों को छल सकता है। और चूँकि ज्ञान का कर्म के साथ समन्वय संभव नहीं है, अतः ज्ञान योग निष्क्रियता या अकर्मण्ता का रूप भी ले सकता है।

श्रीरामकृष्ण में इन सभी समस्याओं का अति स्पष्ट और सुन्दर उत्तर प्राप्त होता है। युवक हरि जो आगे चलकर स्वामी तुरीयानन्द हुए, वेदान्त शास्त्रों के अध्ययन में रुचि रखते थे। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा—"वेदान्त का सार "ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या," यही है न ! बस, इसकी धारणा करने का प्रयत्न करो।" अर्थात् इतने अधिक ग्रन्थ पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? इस तरह उन्होंने बुद्धिवाद को प्रोत्साहित न कर ज्ञान योग के सिद्धान्त को जीवन में उतारने पर बल दिया। तुरीयानन्दजी को ही उन्होंने कहा था कि माँ जगदम्बा की कृपा से सब कुछ सम्भव है, ज्ञान भी।

इस तरह ज्ञानयोगी तुरीयानन्दजी को उन्होंने माँ की भक्ति का भी उपदेश दिया था। एक वेदान्ती कुछ दिनों के लिए दक्षिणेश्वर में रहा था। वेदान्त की दुहाई देकर वह कुछ दुराचरण किया करता था। श्रीरामकृष्ण के पूछने पर उसने कहा कि जब सब कुछ मिथ्या है तो मेरा आचरण ही भला क्यों सत्य होने लगा ? इस पर श्रीरामकृष्ण ने उसे फटकारते हुए कहा था कि मैं ऐसे वेदान्त पर थूकता हूँ। जहाँ तक कर्म त्याग का प्रश्न है, श्रीरामकृष्ण का कथन था कि ज्ञान होने पर कर्म-त्याग अपने आप हो जाता है। उसे प्रयत्नपूर्वक त्यागना नहीं पड़ता। ऐसा स्वयं श्रीरामकृष्ण के जीवन में हुआ था। माता की मृत्यु के बाद तर्पण के लिए जल हाथ में लेने पर जल हाथ से लुढ़क गया था। इसे शास्त्रों में 'गलित हस्त' कहते हैं, तथा यह कर्म त्याग का प्रतीक है।

ज्ञान योग की तरह राजयोग की भी समस्याएँ हैं। या तो राजयोग आसन-प्राणायाम प्रधान हो शरीर केन्द्रित होकर रह जाता है; लोग योग का उपयोग शारीरिक रोग दूर करने में ही करने लगते हैं और अपना प्रमुख आध्यात्मिक उद्देश्य भूल जाते हैं या फिर योगज सिद्धियों के प्रलोभन में फंसकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। श्रीरामकृष्ण ने इन दोनो के प्रति सावधान किया है। उन्होंने स्वयं हठयोग की साधना की थी लेकिन वे उसका कभी उपदेश नहीं देते थे, और न ही अपने शिष्यों को उसकी साधना करने देते थे। सिद्धियाँ तो उनकी दृष्टि में विष्ठा के समान त्याज्य थीं।

भक्तियोग में भी खतरे हैं। त्याग और वैराग्य के अभाव में यह भावुक उच्छ्वास और भोगवाद में परिणत हो सकता है। भले ही श्रीरामकृष्ण भावावेश में नृत्यादि करते थे, प्रेमाश्रु बहाते थे, लेकिन उन्होंने कभी भावावेश में संयम नहीं खोया। भावावेश युक्त एक युवक को देखकर उन्होंने कहा था कि असावधान होने पर उसका पतन हो सकता है, और हुआ भी वैसा ही था। स्वामी विवेकानन्द भावावेश, अश्रुविसर्जनादि के विरोधी ही थे, क्योंकि उनसे मानव का मन कोमल हो जाता है; उसकी दृढ़ता नष्ट होने की संभावना रहती है। श्रीरामकृष्ण भी स्वामीजी की इस बात का अनुमोदन करते थे।

आसक्ति के अभाव में कर्म योग महान बन्धन का कारण हो सकता है। तब वह कर्म योग न होकर केवल कर्म भोग हो जाता है। अहंकार की

वृद्धि की भी संभावना होती है। एक के बाद दूसरा, इस तरह कर्म बढ़ता ही चला जाता है। श्रीरामकृष्ण ने बार-बार इस प्रकार के कर्मों के विरुद्ध सावधान किया है।

योगों के इन दोषों को दूर करने के उपाय वस्तुतः इन योगों मे ही विद्यमान हैं। यदि ठीक-ठीक नियमानुसार इन योगों का अनुष्ठान किया जाय तो कोई समस्या नहीं होती। यह बात श्रीरामकृष्ण के जीवन से स्पष्ट है। इन योगों का परस्पर समन्वय भी इनके प्रत्येक के दोषों के निवारण का उपाय है। इस दृष्टि से श्रीरामकृष्ण का जीवन एक सुन्दर साँचा है, जिसके अनुरूप हमें जीवन को ढालना है। स्वामी विवेकानन्द का स्पष्ट कथन है कि जिस व्यक्ति के जीवन में ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग इनमें से एक की भी कमी होगी उसने अपने चरित्र को श्रीरामकृष्ण रूपी साचे में पूरी तरह नहीं ढाला है।

विवेक शिखा–स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	३,९९० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	ठण्डी, राजस्थान	२०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० वी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	—	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	१०१० रुपये
१८.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१९.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये

भगवान श्रीरामकृष्ण की शिक्षाएँ

—श्री जी० एन०राय चौधरी
इलाहाबाद

श्रीरामकृष्ण की शिक्षाओं की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी सीधी सरल भाषा। उनकी शिक्षाएँ प्रत्यक्ष अनुभूतियों पर आधारित हैं, इसलिए वे लोगों पर अमिट प्रभाव छोड़ती हैं। उनकी शिक्षाओं में कोई सैद्धान्तिक जटिलता या मतवादिता नह है। श्रीरामकृष्ण हमारे दैनन्दिन जीवन से सम्बन्धित उपयुक्त दृष्टान्त तथा उपमाएँ देकर अपनी शिक्षाओं को बड़ा रोचक बना देते हैं। कभी-कभी वे नीति कथाएँ कहकर अपनी बात को स्पष्ट करते हैं। उनकी शिक्षाएँ अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं और हमारे हृदयों की गहराई में आसानी से उतर जाती हैं। नीति कथाओं में कहीं-कहीं उनकी हास्यप्रियता भी दिखाई पड़ती है।

श्रीरामकृष्ण का मानवता के लिए सबसे बड़ा सन्देश है सर्वधर्मसमन्वय का। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक धर्म से कुछ सिद्धान्तों को लेकर मिलाया जाय और इस तरह कोई समन्वय किया जाय। इसका वास्तव में अर्थ यह है कि विश्व में जो विभिन्न धर्म हैं वे सभी सही हैं। उन सबका लक्ष्य एक ही है—वह है ईश्वर-प्राप्ति या ईश्वर-साक्षात्कार। श्रीरामकृष्ण कहते थे - "जत मत तत पथ" अर्थात् जितने धर्म हैं उतने ही मार्ग हैं। ये सब विभिन्न मार्ग हमें एक ही सत्य की ओर ले जाते हैं। इस सत्य के नाम और रूप भिन्न हो सकते हैं, परन्तु सत्य तो एक ही है—एकमेवाद्वितीयम्।

गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :—

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥"

अर्थात् जो व्यक्ति जिस प्रकार से मेरी उपासना करते हैं उसी प्रकार मैं उन्हें प्राप्त होता हूँ। हे पार्थ, मनुष्य सभी प्रकार से मेरे मार्ग पर ही चलते हैं।

शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में ११ सितम्बर, १८९३ को अपने प्रथम ऐतिहासिक व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण की सर्वधर्मसमन्वय की वाणी का दृढ़ता के साथ प्रतिपादन करते हुए गीता के इसी श्लोक के उत्कृष्ट विचार को उद्धृत किया था :—"Whosoever Comes to Me, through whatsoever form, I reach him; all men are struggling through paths which in the end lead to Me."

श्रीरामकृष्ण अपनी बात को बहुत सुन्दर दृष्टान्त देकर समझाते थे। वे कहते—"छत पर पहुँचने के लिए कई साधन हैं। साधन कोई-सा भी हो लक्ष्य तो एक ही है—वह है छत पर पहुँचना" ठीक इसी प्रकार वे कहते - "घर के भीतर जाने के लिए कई दरवाजे होते हैं - सामने का दरवाजा, गलियारी का दरवाजा और पिछवाड़े का दरवाजा। किसी भी दरवाजे से घर के अन्दर प्रवेश किया जा सकता है।" एक और उदाहरण वे दिया करते थे—"कलकत्ते में काली घाट का प्रसिद्ध काली मन्दिर है, वहाँ जाने के लिए कई रास्ते हैं और उन सभी रास्तों से कालीमन्दिर पहुँचा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार विभिन्न धर्म अलग-अलग रास्ते हैं जिन पर चल कर ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है।"

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि अलग-अलग धर्मों की व्यवस्था इसलिए हुई है कि मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ विभिन्न हैं और उनकी क्षमताएँ भी एक जैसी नहीं होतीं। एक ही धर्म या सम्प्रदाय सब मनुष्यों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। इसीलिए विभिन्न प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं को देखते हुए विभिन्न धर्मों की व्यवस्था की गयी है।

श्रीरामकृष्ण इस विचार को इस प्रकार प्रकट करते थे "जार पेटे जा सय" (जिसको जो पच सके) अर्थात् जिसमें जैसी ग्रहण करने की शक्ति हो। इस बात को स्पष्ट करने के लिए वे एक दृष्टान्त देते थे :—

"एक माँ के पाँच बेटे हैं। घर में मछली आती है। माँ प्रत्येक बेटे की पाचन-शक्ति को ध्यान में रखते हुए पाँच विभिन्न प्रकारों से मछली पकाती है। सब बेटों के लिए एक ही प्रकार से नहीं पकाती। इसी प्रकार से ईश्वर ने विभिन्न लोगों की रुचियों और क्षमताओं के अनुसार विभिन्न धर्म तैयार किये।"

चूँकि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है और सार तत्व भी वही है, इसलिए धर्म को लेकर किसी प्रकार का मतभेद या मनमुटाव उचित नहीं है। किसी भी धर्मावलम्बी को यह नहीं सोचना चाहिए उसका धर्म श्रेष्ठ है और अन्य धर्म निकृष्ट हैं।

श्रीरामकृष्ण के सर्वधर्म समन्वय के सन्देश का महत्व सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। आज के इस युग में भी साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक कट्टरता से पैदा होने वाली समस्याओं का समाधान हमें उनकी शिक्षा में ही मिलता है।

श्रीरामकृष्ण का कहना था कि ईश्वर-प्राप्ति के जो मार्ग हैं उनमें से भक्ति का मार्ग सबसे सीधा और सरल है। वे कहते थे —"भक्तियोग कलिकालेर युगधर्म" अर्थात् भक्ति योग कलियुग का युगधर्म है। ज्ञान का मार्ग कठिन और लम्बा है। इन दो मार्गों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए वे एक दृष्टान्त देते थे —"बरसात में जब दो गाँवों के बीच काफी पानी भर जाता है तो नाव पर बैठ कर आसानी से हम सीधे एक गाँव से दूसरे गाँव तक पहुँच जाते हैं। भक्ति का मार्ग ऐसा ही है। परन्तु दूसरी ऋतुओं में एक गाँव से दूसरे गाँव तक जाने के लिए रास्ता लम्बा और टेढ़ा हो जाता है, क्योंकि तब बीच में खेत, नाले और गड्ढे पड़ते हैं। यह है ज्ञान का मार्ग।

भक्त और भगवान के सम्बन्ध में वे एक बहुत सुन्दर उदाहरण देते थे -'एक जमींदार अपनी जमींदारी में कहीं भी रह सकता है, परन्तु वह अधिकांशतः अपने बैठकखाने में रहता है। ठीक उसी प्रकार भगवान सर्वव्यापी हैं, सभी भूतों में उनका निवास है, परन्तु वे अधिकतर भक्तों के हृदय में रहते हैं।" श्रीरामकृष्ण के अनुसार भक्त का हृदय भगवान का बैठक खाना है।

उनका कहना था कि कर्म योग का मार्ग कठिन है, क्योंकि अनासक्त होकर कर्म करना काफी मुश्किल होता है। हमारा 'अहम्' हमें आसक्ति रहित नहीं होने देता। इसलिए वे बार-बार कहते हैं कि कलियुग में नारदीय भक्ति का मार्ग ही सबसे अच्छा हैं।

श्रीरामकृष्ण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए संन्यास आवश्यक नहीं हैं। गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए भी मनुष्य को ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है- या तो कर्मयोग के द्वारा या भक्तियोग के द्वारा। गृहस्थ को चाहिए कि वह संसार में रहते हुए तथा अनासक्त होकर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए अपनी दृष्टि को सदा ईश्वर पर निबद्ध रक्खे। वे इस विषय में एक दृष्टान्त देते हैं :—

"एक धनी व्यक्ति के यहाँ एक नौकरानी काम करती है। उसका गाँव-घर और कहीं है। वह इस धनी व्यक्ति के घर में अपना काम पूरी निष्ठा के साथ करती है, अपने मालिक के बच्चों को प्यार से 'मेरा राम', 'मेरा हरि' कहती है।

परन्तु वह मन ही मन जानती है कि यह उसका घर नहीं है और ये बच्चे उसके अपने बच्चे नहीं हैं। मालिक के घर में पूरी निष्ठा के साथ काम करते हुए भी उसकी दृष्टि अपने गाँव-घर पर ही निबद्ध रहती है। इसी प्रकार गृहस्थ को चाहिए वह बिना आसक्ति के पूर्ण निष्ठा के साथ अपने सांसारिक कर्तव्यों का पालन करे, परन्तु अपनी दृष्टि हमेशा ईश्वर पर निबद्ध रक्खे। खाली समय में ईश्वर का जप-ध्यान-चिन्तन या भजन-कीर्तन करे, परन्तु अपने पारिवारिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह भी करता रहे।

श्रीरामकृष्ण कहते थे 'मन-मुख एक करो' अर्थात् जैसा सोचते हो, वैसा बोलो और वैसा ही। मन, वचन और कर्म के बीच सामंजस्य होना चाहिए। उन्हें किसी भी प्रकार का ढोंग या मिथ्या आडम्बर पसन्द नहीं था। वे कहते—"मिथ्या किछुई भालो नय" अर्थात् कोई भी झूठा दिखावा ठीक नहीं है। यदि मन में वैराग्य नहीं है तो गेरुआ वस्त्र पहनने की कोई आवश्यकता नहीं। एक बार एक व्यक्ति, जिसके मन में वैराग्य नहीं था, गेरुआ कपड़ पहन कर उनके सामने उपस्थित हुआ। उन्होंने इस बात पर उस व्क्ति की भर्त्सना की।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के एक गृहस्थ भक्त थे रामचन्द्र दत्त। उनका चचेरा भाई, जो विवाहित था, अपने परिवार को ससुराल में छोड़ कर ठाकुर की शरण में आया। वह बोला "मेरा मन संसार से ऊब चुका है, मैं अब आपके पास यहीं रहूँगा।" ठाकुर बोले "यह तो ठीक नहीं है। तुम्हारे परिवार का भार क्या दूसरे लोग वहन करेंगे? वापस जाओ और अपने परिवार के प्रति कर्तव्य का पालन करो।" उन्होंने उसे समझा बुझाकर वापस कर दिया।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण का कहना था कि ईश्वर को पाने के लिए चाहिए गहरी निष्ठा, गहरा विश्वास, असीमित धैर्य और पूर्ण समर्पण की भावना। वे इस विषय में एक दृष्टान्त देते थे "राजा से मिलने के लिए सात ड्योढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं, तब जाकर राजा के दर्शन होते हैं। ठीक उसी प्रकार अनेक कष्ट उठाने पर ईश्वर के दर्शन होते हैं।" उपासना का मार्ग कोई भी हो सकता है, अपनी प्रवृत्ति या सामर्थ्य के अनुसार। बस चाहिए एकाग्र निष्ठा।

ठाकुर कहते थे "एक अर्थात् ईश्वर का ज्ञान हो गया तो सब ज्ञान प्राप्त हो गया। एक के बाद शून्य लगाते जाइए, संख्या बढ़ती चली जाएगी, परन्तु उस एक को हटा लीजिए तो सब शून्य हो जाएगा। इसलिए जहाँ ईश्वर-ज्ञान नहीं है, वहाँ और कुछ ज्ञान शून्य के समान निरर्थक है।"

उनका विश्वास था कि ईश्वर का दर्शन पाने के लिए अन्तर की तीव्र व्याकुलता आवश्यक है। एक बार हिन्दू धर्मशास्त्रों के परम विद्वान् शशधर तर्कचूड़ामणि ने उनसे पूछा - "ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए किस तरह की व्याकुलता चाहिए?" ठाकुर बोले - "एक गुरु ने अपने शिष्य से कहा — 'चलो, मैं तुम्हें दिखाता हूँ कि ईश्वर-प्राप्ति के लिए कितनी गहरी छटपटाहट होनी चाहिए।' गुरु अपने शिष्य को एक पोखरे के पास ले गये और धक्का देकर उसे पोखरे के पानी में गिरा दिया। कुछ क्षणों के बाद उसे पानी से निकाल कर गुरु बोले 'तुम्हें कैसा अनुभव हुआ? शिष्य बोला--- 'मैं हवा में साँस लेने के लिए बुरी तरह से छटपटा रहा था।' गुरु बोले—बस ऐसी ही तीव्र छटपटाहट या अकुलाहट चाहिए ईश्वर को पाने के लिए।" श्रीरामकृष्ण ने पण्डित शशधर से कहा— "किसी को पानी में डुबोकर रखने से जैसी तीव्र छटपटाहट होती है बाहर खुली हवा में साँस लेने के लिए, वैसी ही तीव्र छटपटाहट ईश्वर-दर्शन के लिए होनी चाहिए"

आध्यात्मिक पथ पर चलने के लिए हम प्रारम्भ कैसे करें, इस विषय में ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"पहले सत्संग करो। ईश्वर सभी में हैं

परन्तु फिर भी दुर्जनों से दूर रहो और सम्पर्क सज्जनों के साथ ही रखो। बाघ में भी भगवान हैं, लेकिन बाघ को सीने से नहीं लगाया जा सकता। फिर हरिनाम कीर्तन करो, एकान्त में में बैठ कर ध्यान और जप करो और भगवान को रोकर बुलाओ। रोने में बड़ी शक्ति है।" ठाकुर इस सम्बन्ध में एक बहुत सुन्दर उदाहरण देते थे - "बच्चा जब तक अपने खिलौनों से खेलता रहता है, तब तक उसकी माँ उसके पास नहीं आती, परन्तु जब खिलौने फेंक कर बच्चा माँ के लिए रोने लगता है तब माँ दौड़ी आती है। ठीक उसी प्रकार जब तक हम सांसारिकता में डूबे रहते हैं, ईश्वर हमारे पास नहीं आते, लेकिन जब हम रोकर ईश्वर को बुलाते हैं, तब वे आते हैं।"

ठाकुर के अनुसार ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर बढ़ने के लिए चित्तशुद्धि आवश्यक है। चित्तशुद्धि के लिए आवश्यक है काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि का त्याग। काम-कांचन के प्रति आसक्ति रहने पर ईश्वर लाभ नहीं हो सकता। अहंकार के रहने पर सच्चा ईश्वर-प्रेम नहीं हो सकता। अहंकार कई तरह का होता है—धन का अहंकार, विद्या का अहंकार, रूप का अहंकार, कुल या जाति का अहंकार। एक बार प्रसिद्ध साधक विजयकृष्ण गोस्वामी ने ठाकुर से पूछा "हललोग ईश्वर को क्यों नहीं देख पाते?" उन्होंने उत्तर दिया— "अहंकार ही इसका कारण है। अहंकार एक ऐसे मेघ के समान है जो सूर्य को ढँक लेता है।" ठाकुर के अनुसार ज्यों-ज्यों सांसारिकता या विषयों की प्रीति कम होगी, त्यों-त्यों ईश्वर-प्रीति बढ़ेगी। इस विषय में वे एक सुन्दर दृष्टान्त देते थे--- "मान लीजिए कोई कलकत्ते से काशी जा रहा है। वह काशी के जितने निकट पहुँचेगा उतना ही कलकत्ते से दूर जा सकेगा।"

पाप के सम्बन्ध में उनकी शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बाइबिल में Original sin अर्थात् आदि पाप की जो बात बार-बार कही गयी है, वह उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं थी। वे कहते थे - "जो बार-बार 'मैं पापी हूँ' ऐसा कहता है, वह सचमुच पापी हो जाता है। देह रूपी वृक्ष पर पापरूपी पक्षी बैठे हुए हैं; हरिनाम-कीर्तन की ताली पीटो, पापरूपी पक्षी उड़ जायेंगे।" उनके परम भक्त गिरीशचन्द्र घोष ने उनसे एक बार कहा, "ठाकुर, मेरा क्या होगा? मैं तो बहुत पापी हूँ।" ठाकुर ने उत्तर दिया, "माँ काली का नाम लेकर एक फूंक लगाओ, पाप का पहाड़ उड़ जायेगा।"

श्रीरामकृष्ण जीव सेवा पर बहुत अधिक जोर देते थे। उनका कहना था—"हमें जीव पर दया नहीं, जीव की सेवा करनी है - 'शिवज्ञाने जीव सेवा' अर्थात् शिव समझ कर जीव मात्र की सेवा। हमें दीन-दुखियों की सेवा करनी चाहिए बिना किसी अहंकार के—यह समझते हुए कि सेवा हम नहीं कर रहे हैं, हम तो निमित्त मात्र हैं और ईश्वर हमसे सेवा करवा रहा है।"

लोक शिक्षा के सम्बन्ध में ठाकुर श्रीरामकृष्ण का कहना था कि ईश्वर-ज्ञान के बाद 'चपरास' अर्थात् ईश्वरप्रदत्त अधिकार या आदेश प्राप्त होने पर ही लोक शिक्षा का कार्य करना चाहिए। इसके पहले यह कार्य हास्यास्पद होगा। 'चपरास' प्राप्त किये बिना इस कार्य को करना कुछ ऐसा ही होगा जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे को रास्ता दिखाकर ले जा रहा हो। ईश्वर से आदेश या अधिकार प्राप्त होने पर अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है और तब यह काम आसान हो जाता है।

इस एक 'चपरास' या ईश्वरप्रदत्त अधिकार के विषय में ठाकुर एक सुन्दर दृष्टान्त देते हैं--"एक गाँव में एक पोखरा था। कुछ लोग इसके किनारे पर नित्यक्रिया से निवृत्त होने के लिए आते और उसे गन्दा कर देते। जो लोग सवेरे पोखरे के घाट पर नहाने आते, वे ऐसे लोगों को गालियाँ सुनाते, बुरा-भला कहते, परन्तु अगले दिन वही बात दुहरायी जाती। फिर एक दिन कम्पनी सरकार

का एक चपरासी सरकारी नोटिस लगा गया कि यहाँ पोखरे के किनारे पर किसी तरह की गन्दगी फैलाना मना है और यदि किसी ने ऐसा किया तो सजा मिलेगी। इसका तुरन्त प्रभाव हुआ और लोगों ने वहाँ गन्दगी फैलाना बन्द कर दिया।"

श्रीरामकृष्ण की शिक्षाओं की प्रासंगिकता सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। आज के इस युग में तो उनकी प्रासंगिता और भी अधिक है। आज विश्व में भौतिकतावाद तथा सन्देहवाद का बोलबाला है। धन और सत्ता के लिए गलाकाटू होड़ लगी हुई है। चारों ओर अशान्ति और भ्रष्टाचार है। इसका एक ही समाधान है—वह है श्रीरामकृष्ण का सन्देश—'निःस्वार्थ ईश्वर-प्रेम और जीवसेवा'।

विश्व-विख्यात इतिहासवेत्ता आर्नल्ड जे० टॉएनबी का विश्वास है कि आज यह विश्व भयानक आणविक हथियारों से लैस होकर विनाश के कगार पर खड़ा है। उसकी रक्षा का एक ही मार्ग है वह है भारतीय मार्ग अशोक और गांधी की अहिंसा और श्रीरामकृष्ण की धार्मिक समन्वय की वाणी।

(१ ए, न्यू लश्कर लाइन्स,
पुराना वैरहना,
इलाहाबाद-२२११००३)

बिहार रामकृष्ण विवेकानन्द भाव प्रचार परिषद्

वार्षिक अधिवेशन

बिहार रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद् का वार्षिक अधिवेशन ६ अप्रैल, १९९१ से ८ अप्रैल, १९९१ तक श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम, बेला रोड, मुजफ्फरपुर में मनाया जायगा। इसमें बेलुड़ मठ के वरिष्ठ संन्यासियों के अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन बिहार के ७ शाखा केन्द्रों के सचिव भी सम्मिलित होंगे।

बिहार के सभी स्वतंत्र रामकृष्ण आश्रम के सचिवों से आग्रह है कि वे स्वयं एवं अपने केन्द्र के पाँच प्रतिनिधियों के साथ इस अधिवेशन में अवश्य भाग लेने की कृपा करें।

स्वामी सुहितानन्द
अध्यक्ष
(भाव-प्रचार परिषद्)
सचिव
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

श्रीगंगाधर मुखर्जी
संयोजक
(भाव-प्रचार परिषद्)

महागुरु महादेव

हरिन्द्रानन्द

मनुष्य को शारीरिक शक्ति से अधिक बलशाली है उसकी मानसिक शक्ति और मानसिक शक्ति से बलशाली है उसकी आध्यात्मिक शक्ति। आध्यात्मिक शक्ति ही मानसिक तथा शारीरिक शक्ति के निरूपण का आधार है। उसकी नियामक शक्ति है। आध्यात्मिक शक्ति के अभाव या गलत दिशा-निर्देशन से चिंतन के विकास का आधार भी संकुचित अथवा गलत होगा। मनुष्य की विचार धारा भी संकुचित होगी। फलतः मनुष्य अपने निजी दायरे से बाहर परहित एवं मानव हित का चिंतन नहीं कर पायेगा। अब तक गुरु ही आध्यात्मिक आलोक के प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करते आये हैं। गुरु-पद मूल रूप से आध्यात्मिक शक्ति के विकास का प्रेरणा स्रोत रहा है। गुरु शिष्य को शिव बनाते हैं। शिष्य में अपरिहार्य रूप से अंकुरित जागतिक आकर्षण के साथ-साथ परमात्मा के प्रति आकर्षण की उत्पत्ति के भार को गुरु ही वहन करते हैं। वाराहोपनिषद् का कथन है :—

दुर्लभो विषयत्यागो, दुर्लभः तत्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था, सदगुरो करुणा बिना॥

महादेव की पूजा परमात्मा, जगतगुरु, मृत्युंजय देवाधिदेव आदि स्वरूपों में होती आयी है। जगतगुरु के रूप में वे "सर्व सिद्धेश्वरः सिद्धो योगीन्द्राणां गुरोगुरुः" है। महादेव आदि गुरु हैं एवं आध्यात्मिक साहित्य मूलतः शिव-पार्वती संवाद है। दक्षिणामूर्ति उपनिषद् में महादेव को आचारेन्द्र कहा गया है, और उनकी मौन व्याख्या ही परब्रह्मतत्व को प्रकट कर देती है। आदिगुरु देवाधिदेव महादेव जिस शरीर का आश्रय लेकर अपनी करुणामयी शक्ति संचारित करते हैं उसे गुरु शरीर कहा जाता है। संत ज्ञानदेव ने कहा है कि जगतगुरु रूप से अभिहित होने वाले भगवान शंकर द्वारा उपदिष्ट साक्षात् ब्रह्मविद्या जो दया से निरन्तर आर्द्र है, वह संसार में सदा विजयिनी है। हम उसे सर्वदा नमस्कार करते हैं।

गुरुरित्याख्यया लोके विद्या साक्षाद्वि शांकरी।
ज्यत्याज्ञा नमस्तस्यै दयार्द्राय निरन्तरम्
—अमृतानुभव

"जगतगुरु" शब्द की विवेचना से स्पष्ट है कि जगत् का कोई भी व्यक्ति महादेव का शिष्य हो सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति में स्वभाव एवं रुचियों के आधार पर भिन्नता है। बहुत सारे व्यक्तियों में आध्यात्मिक आकर्षण का आवेश दीखता है किन्तु वे गृहस्थाश्रम त्याग पाने की मन स्थिति में नहीं हैं। गुरु गोरखनाथ के द्वारा प्रतिष्ठित साधना गृहस्थाश्रम को एक सीमा के उपरान्त अनुकूल नहीं मानती। राजा जनक स्वयं गृहस्थ थे एवं सिद्ध योगी भी। प्रातः स्मरणीय रामकृष्ण परमहंस भी स्वयं गृहस्थ थे किन्तु उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को विवाह से विमुख होने की सलाह दी। सद्गुरुओं में भी वैचारिक एवं रुचिगत भिन्नता हैं। महादेव सभी सद्गुरुओं के गुरु हैं। उनमें वैचारिक एवं स्वभावगत विसंगतियों की संगति है। अघोरेश्वर, कपालेश्वर, योगेश्वर आदि विभिन्न रूपों में सभी साधना-पद्धति की वे अंतिम पराकाष्ठा हैं। उमापति

होते हुए भी वे निस्संगी हैं।

गुरु आचार्य होते हैं। पथप्रदर्शक का आचरण उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अनुरूप होना उसकी कथनी करनी में समरूपता लाता है। महादेव गुरु हैं। आचारेन्द्र हैं अतएव उनका जीवन सामान्य जन की तरह है। वैभव और विलासिता से दूर महादेव साधुता की पहली तथा अंतिम पहचान है। उन्होंने सबके लिए विषपान किया और मृत्यु के प्रतीक सर्पों को अपना आभूषण बनाया। न्यूनतम व्यवस्था में रहकर मनुष्य शिव हो सकता है, जगतगुरु महादेव इसके उदाहरण हैं। आज के परिवेश से परिलक्षित है कि गुरु के द्वारा आचरण से शिष्य को सिखलाने की मान्यता में कमी आयी है। साधना पूजादि का उद्देश्य जागतिक सुख हो गया है। यह सत्य है कि पूजा-अर्चना से जागतिक कष्टों से निवृति पायी जा सकती है, किन्तु पूजा तो परमात्मा के प्रति प्यार और समर्पण है। भोग और भक्ति दोनों साधना-पूजा के लक्ष्य हैं। तंत्र कहता है कि सद्गुरु की कृपा के बिना भोग और मोक्ष अभिन्न रूप से नहीं मिलते। महादेव ओघड़दानी हैं एवं जगतगुरु के रूप में भोग और मोक्ष अभिन्न रूप से देते हैं।

अब आवश्यकता हो आयी है कि गुरुओं के गुरु भगवान शंकर का शिष्यत्व स्वीकार किया जाये। उन्हें अपना गुरु होने का भाव दिया जाये। परीक्षा की जाय कि महादेव मात्र शास्त्रों एवं सिद्धान्तों में गुरु हैं अथवा अपने शिष्यों में शिव-भाव का आवेश जगाकर प्रबुद्ध भी करते हैं। महादेव जो घर-घर के आराध्य हैं, उन्हें गुरुभाव से भी नमन कर परिणाम अनुभूत किये जा सकते हैं। महादेव से गुरुभाव अबाध गति से प्रवाहित है। जीव को शिव में ले जाने, भव बंधनों से मुक्त करने की परमात्मा की करुणा ही गुरु-भाव कहलाती है। गुरु करुणामूर्ति होते हैं। महादेव तो सर्वोच्च गुरु हैं अतएव "करुणावतार" हैं।

पहनने को वस्त्र नहीं है फिर भी सम्पत्तियों के जनक हैं, रहने को अच्छा आवास नहीं है फिर भी तीनों लोकों के स्वामी हैं। स्पष्टतः महादेव से सतत प्रवाहित करुणा व्यक्ति के शिष्यभाव से मिलते ही उसके मन में चिन्मयी उद्वेलन उत्पन्न करेगी। व्यक्ति की चिन्तन धारा स्वार्थ-जनित तटबंधों को तोड़ सर्वमयी होगी। मन का भैरव दैविक-दैहिक-भौतिक कष्टों को अपने त्रिशूल से विदीर्ण करेगा। मनुष्य के सारे भौतिक एवं आधिभौतिक सम्बन्ध भाव से ही चरितार्थ होते हैं। भावचूड़ामणि में उल्लिखित है कि "नभावेन विना देवो यंत्र मंत्रा फलप्रदा" सृष्टि के मूल में परमात्मा की इच्छा है। इच्छाओं के एक विशेष दिशा में घनीभूत प्रवाह को इच्छाशक्ति या भाव की संज्ञा दी गयी है। गुरु शिष्य का संबंध भी भाव के धरातल पर ही आधारित है। मात्र अपने घरों में सदियों से पूजित देवाधिदेव महादेव को शिष्यभाव का अर्पण व्यक्ति को स्वतः शिव भाव से भावित करेगा। यह तो सर्वमान्य है कि महादेव की पूजा कर हम वैभव एवं समृद्धि प्राप्त करते हैं। शिव-शिष्य का भाव हमें अतुलनीय शांति देगा। महादेव स्वयं अघोरेश्वर हैं। घोर की परिधि से बाहर परमशान्त और विश्वमूर्ति हैं। कोई भी गुरु शरीर की सीमाओं से परे एक-भाव सत्ता हैं। शरीरधारी गुरु का भी ध्यान बंद आँखों से ही होता है और गुरुभाव ही शिष्य को शिव बनाता है। अगस्त्य, दधीचि आदि से लेकर मत्स्येन्द्रनाथ तक ने महादेव को गुरु, मानकर साधुता को सम्मानित किया। आदिकाल से जब देवाधिदेव महादेव से उनके अन्य स्वरूपों की पूजा-अर्चना कर हम अपने विघ्नों से त्राण पाते रहे हैं तो अध्यात्म के इस संक्रान्ति काल में उनका गुरु स्वरूप निश्चित रूप से अपने शिष्यों को परम-ज्ञान देगा।

प्रेरणादायक है शिव-पार्वती का व्यक्तित्व

डॉ. नागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र

देवाधिदेव महादेव भारतीय संस्कृति के आदि देवता हैं और उमा-पार्वती आदि देवी हैं। शिव शक्ति से ही प्रेरित हो यह सारा संसार आलोकित है। शिव शब्द का अर्थ ही है "मंगल" कल्याण तथा शक्ति का अर्थ ही है परम शिव में अपृथक सिद्ध होकर रहने वाला परम तत्व। परम सत्ता से भिन्न शक्ति एवं शक्ति से पृथक परम सत्ता परमात्मा नहीं है। यह चरचरा जगत परम सत्ता का ही प्रतिरूप या प्रतिच्छवि है। धर्मस्वरूपा शक्ति, शक्ति स्वरूपा शिव से पृथक् नहीं है। शक्ति तत्व से लेकर पृथ्वी तत्व पर्यन्त यह सारा संसार शिव तत्व से ही उत्पन्न हुआ है। तभी तो तुलसी ने मानस की पूर्व पीठिका में ही शिव शक्ति की प्रार्थना की है :—

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वा रुपिणौ
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थीमश्वरम्

भोले भंडारी अवघड़ दानी शिव-पार्वती की कृपा से कौन-सी वस्तु अप्राप्त है ! भक्तों पर शीघ्रता में रीझने वाले शंकर धतूरे और बेलपत्र तथा अक्षत एव चन्दन पर ही सब कुछ दे देते हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण वे महादेव कहे गए हैं। शंकर की कृपा का लाभ बहुत ही सहज रूप में प्राप्त किया जा सकता है। भक्तों पर कृपा की वर्षा करने वाले "शिव-शंकर भोले दानी" को पुराणों उप पुराणों, वेदों, उपनिषदों में "रुद्र' के नाम से भी पुकारा गया है। ऋग्वेद में बार-बार "रुद्र" शब्द का प्रयोग हुआ है, यही "रुद्र" जब प्रलयंकर शिव हो जाते हैं तो उनका शिवत्व भी उस समय भी उनके साथ ही रहता है। ऐसे प्रलयंकर रुद्र के संबंध में मानस में ही कहा गया है :—

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हर तोषये।
ये पठन्ति नरा भकत्या तेषां शंभु प्रसीदति ॥

भगवान शिव का स्वभाव भी यही है। कभी वे भक्तों पर रुष्ट होते हैं तो कभी वे उन पर कृपा भी करते हैं। यही कृपा एवं रुष्ट होने की विशेषता शिव में देखने योग्य है।

मानस के सती प्रसंग में शिव का रुद्र रूप देखने के योग्य है :—वहाँ शिव रुद्र होकर संकल्प करते है :—

"एहि तन सतिहि भेट अब नाहीं।
शिव संकल्प कीन्हें मन माहीं ॥"

कितना विकट संकल्प है भगवान उमा नाथ शिव का ! जहाँ शिव ने यह संकल्प लिया वहाँ सती भी उनसे पीछे नहीं रही। उन्होंने भी वहीं अपने को उसी यज्ञस्थल में समाहित कर लिया। आगे के प्रसंग में वही सतीस्वरूपा पार्वती उनसे भी बढ़कर संकल्प लेती हैं :—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी
बरउँ शंभु न त रहउँ कुआरी।
वे तो करुणा सिन्धु है, उमा रमण है :—
कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुणा
अयन।"

क्योंकि उनका स्वभाव ही भक्तों को आनन्द देनेवाला है। मानस में आया है :—

कलातीतकल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी।"

घर द्वार छोड़ कर उसी शिव की प्राप्ति के लिए उमा-पार्वती सहज-साधना में अपने को लीन कर लेती हैं। सहज-साधना से ही जीवन में सम्पन्नता आती है। अतः साधना पथ पर बढ़ते हुए जीव को उचित साध्य के हेतु सतत क्रियाशील रहना चाहिए। पार्वती की इसी सहज साधना से अभिभूत होकर कालिदास उन्हें "अपर्णा' कह कर पुकारते हैं। उमानाथ शिव को वहाँ अपनी प्रतिज्ञा छोड़नी पड़ी। अन्त में सती-पार्वती को शिव मिल ही जाते हैं। संत तुलसीदास ने मानस की भावभूमि पर लौकिक परिवेश में शिव एवं पार्वती के विवाह का बड़ा ही यथार्थता से सुन्दर चित्रण किया है। यह लोकमंगल के लिए कवि की प्रतिभा का प्रकाश है। शिव-पार्वती के सुखद दाम्पत्य जीवन की यह कल्पना भारतीय जीवन-धारा के लिए उद्बोधन नहीं तो और क्या है? तभी लोग आज भी शिव-पार्वती को ही सुखद दाम्यपत्य जीवन का प्रेरणा स्रोत मानते हैं। पति-पत्नी दाम्पत्य सुख के लिए शिव से प्रार्थना करते हैं।

भगवान शिव एवं पार्वती जीव जगत् के लिए माता और पिता के समान हैं तथा उसी प्रकार वे संसार के जीवों का पालन पोषण भी करते हैं। शिव का और पार्वती का सहज साधनामय जीवन तथा दाम्पत्य आदर्श विश्व साहित्य में अद्वितीय स्थान का अधिकारी है। उनका पारिवारिक परिवेश भी प्रेरणा की वस्तु हैं। पार्वती की दृष्टि में शिव का स्वरूप ही अनोखा है :—

हमरे जान सदा शिव योगी
अज अनवद्य अकाम अभोगी।
करहु सदा संकर पद पूजा
नारि धरमु पति देउ न दूजा।

शिव और पार्वती की साधना का फल ही है कि उनका एक पुत्र पुरुषार्थस्वरूप कार्तिकेय देवताओं का सेनापति दूसरा पुत्र ज्ञान का देवता गणेश है जो अपने आप में अद्वितीय एवं शीर्षस्थान पर है। कितना सम्पन्न भरा पूरा परिवार है शिव का! इस तरह लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टियों से शिव-पार्वती की जोड़ी अनुपम है तभी तो भारत के कोने-कोने में शिव पूज्य हैं। भारत ही क्यों संसार के अनेक देशों में शिव विश्वदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। तभी तो भारत में ऐसा एक भी गाँव नहीं है जहाँ शिव मन्दिर नहीं है। सभी मांगलिक कार्यों के प्रारम्भ में लोग शिव-पार्वती की पूजा अखंड आनन्द के लिए करते हैं। गणदेवता या ज्ञान के देवता के रूप में लोग गणेश की पूजा किये बिना नहीं रहते। शक्ति प्रदाता कार्तिकेय का पौरुष भी अंकनीय है। तभी तो तुलसी के राम भी शिव के प्रति अपनी अचल भक्ति निवेदित करते हैं।

सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।

वैसे त्रयंबक, त्रिनेत्रधारी, रुद्र, शिव के प्रति वन्दना की परम्परा अति प्राचीन है। ऋग्वेद में भी आया है :—

त्रयम्बकं यजामहे सुगंधि पुष्टि वर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

इतना ही नहीं लंका विजय के पूर्व भी सर्वार्थ सिद्धि के लिए राम सागर तट पर शिव लिंग की स्थापना करते हैं।

करिहऊं इहा संभु थापना
मोरे हृदय परम कल्पना।
शिव द्रोही मम भगत कहावा
सो नर सपनेहु मोहि न भावा।

सावन की सोमवारी हो या शिवरात्रि का पावन पर्व भगवान शिव की पूजा लोग श्रद्धा भक्ति के साथ किये बिना नहीं रहते। बम-बम करते कांवर उठाये बिना नहीं रहते। ❑

सरल, निर्गुण साधक संत रैदास

— श्री सुनील कुमार तिवारी

संत रैदास के जन्म की निश्चित तिथि अबतक संदिग्ध-सी है। फिर भी प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कबीर के समकालीन होने के कारण इनका समय संवत १५३९ से १५८४ तक माना जाता है। जिस समय संत रैदास का आविर्भाव हुआ, वह काल भारत वर्ष के इतिहास में हिन्दू-जाति के लिए सर्वाधिक नैराश्यपूर्ण रहा। अशांति-अव्यवस्था, नैतिक अवमूल्यन एवं दमन - नीति पराकाष्ठा पर थी, व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र पूर्णतः पंगु की स्थिति को प्राप्त कर गये थे। राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक व्यवस्था विशृंखलित-सी हो गयी थी। विनाश का ताण्डव-नृत्य चल रहा था। जाति-पाति, कट्टर धार्मिक नीति एवं वाह्याडंबरों ने जनता के मध्य कुंठा का भाव भर दिया था, जिससे प्रायः सभी वर्गों में कलह-कटुता, द्वेष और निराशा का भाव बढ़ता जा रहा था। इस प्रकार, संक्रमण के इस दौर में एक ऐसे महामानव की आवश्यकता थी, जो आदर्शविहीन एवं नैराश्यपूर्ण जनता के मन-प्राणों में नवीनता की ज्योति ज्वलित कर जातीय जीवन को सदा के लिए परम प्रभु के कर-कमलों से सयुक्त कर सके। सत रैदास एक ऐसी ही अमर विभूति थे, जिन्होंने कर्त्तव्यविमूढ़ समाज को प्रेम एवं मानवता की शिक्षा दी, सनातन धर्म की रक्षा की, एवं सत्य तथा ज्ञान का प्रकाश फैलाया।

सत रैदास का जन्म स्थल काशी है। वे चमार कुल में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम रघु तथा माता का नाम घुरबिनिया था। इनके पूर्वज काशी में मृत पशुओं को ढोने का कार्य करते थे। कथा है कि पूर्व जन्म में ये ब्राह्मण थे, और स्वामी रामानन्द के शाप से चमार कुल में उत्पन्न हुए। संत रैदास ने ढोरों का व्यवसाय करते हुए माया का सर्वथा परित्याग कर दिया था। स्वभाव से वे उदार, दयालु, ईमानदार और सच्चे थे। साधु-संतों की सेवा करना इनका दैनिक कार्य था और इस कार्य में इनके सर्वाधिक पैसे व्यय होते थे। इसी कारण इनके पिता सदैव इन पर क्रुद्ध रहा करते थे। बात यहाँ तक बढ़ी कि उन्होंने रैदास को घर से निकाल दिया और खर्च के लिए एक पैसा भी नहीं दिया।

रैदास निर्गुण सत थे। वे नियमित रूप से पूजा करते थे। उनकी पूजा बेमिसाल थी। प्रेम और वैराग्य की वे जीवत मूर्ति थे। श्री हरिचरणों का अनन्य आश्रय ही उनकी साधना का प्राण है। उन्होंने अपने कर्म से ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने ऊँची उड़ाने भरी हैं। उनकी भक्ति, भक्त और भगवान को अभिन्न बना देती है।

भक्तमाल में रैदास के सबंध में कई बातें लिखीं हैं। उनमें एक यह भी है कि चित्तौड़ की रानी ने, जो एक बार काशी यात्रा के लिए आयी थीं, रैदास की महिमा सुनकर उनको अपना गुरु बनाया। पण्डितों ने इसका जमकर विरोध किया। वे जाति को बड़ा बता रहे थे और सत रैदास ने भक्ति को सबसे बड़ा बताया। अन्त में, यह तय हुआ कि जिसके आमंत्रण पर भगवान की मूर्ति सिंहासन छोड़कर आ जाये, उसी की बात सत्य मानी जायेगी। पंडित लोग वेद मंत्र पढ़कर हार गये परन्तु वे सफल नह हुए। फिर रैदास की बारी आयी। उन्होंने प्रेम और दीनभाव से भगवान को पुकारा, मूर्ति सिंहासन से उठकर उनकी गोद में आ गयी। सब लोग भौंचक्का रह गये। रैदास की बात सत्य मानी गयी।

कहा जाता है कि ब्राह्मणों का अभिमान मिटाने के लिए रैदास ने उसी समय अपने कंधे की खलड़ी उधेड़कर जनेऊ दिखाया। उनका कहना था, बाहरी भेष बनाने से ईश्वर का मर्म नहीं जाना जा सकता। इसलिए उन्होंने चेतावनी भी दी है कि –

भेष लियो पै भेद न जान्यो।
अमृत लेह विषे सो सान्यो।
काम-क्रोध में जनम गँवायो।
साधु संगति मिलि राम न गायो।
तिलक दियो पै तपनि न जाई।
माला पहिरे धनेरी लाई।
कहि रैदास मरम जो पाऊं।
देव निरंजन सत कर ध्याऊं।"

वे दूसरों के दुःख को समझते थे। इनका कहना था कि अहंकार के कारण ही भक्त दुःख भोगता है। यह सर्वविदित है कि प्रभु घटघट वासी हैं। उनके नाम अनेक हैं, लेकिन वे एक ही हैं। यह जानते हुए भी लोग भेद-भाव, ऊँच-नीच के चक्कर में पड़े रहते हैं। यहाँ तक कि भगवान में भी भेद पैदा करते हैं। इसलिए रैदास ने सावधान किया है कि उनकी पूजा बेकार है जिन्होंने –

"कृष्ण करीम राम हरि राघव जब लगि एक न पेखा।
वेद कितेब, कुरान पुरानन, सहज एक नहीं देखा॥"

संत रैदास के संबंध में चमत्कार की कई बातें प्रख्यात हैं, जिनसे यही स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भगवान के दरबार में जाति-पाति का उतना महत्व नहीं है जितना भक्ति और लगन का है। रैदास के लिए न कोई जाति ऊँची थी और न नीची। सच तो यह है कि रैदास ने जगत के समग्र नश्वर संबंधों को त्याग कर अलौकिक परम प्रभु से अपना नाता जोड़ लिया था। उन्होंने भगवान को सम्बोधित करते हुए कहा भी है कि—

"जो तुम तोरो राम, मैं नहिं तोरों।
तुम सो तोरि, कवन सों जोरों॥
मैं अपना मन हरि सों जोरयो।
हरि सों जोरि सबन सों तोरयो॥"

संत रैदास ने जीवन का मर्म अच्छी तरह जान लिया था। इनके सिद्धांत अत्यधिक उच्च एवं उदार थे। इनकी निष्ठा कोरे ज्ञान की अपेक्षा सत्यानुभूति में विशेष थी। राम का परिचय प्राप्त करने के बाद ही "दुविधा" नष्ट हो जाती है और तभी "परम वैराग" की स्थिति प्राप्त होती है, इस परम सत्य का परिचय इन्होंने अनुपम एवं अनिर्वचनीय रूप में दिया है। इनके जीवन का सार राम की ही भक्ति थी। इसलिए वे कहते हैं "ऐ मन राम की भक्ति कर। माया के भ्रम में कहाँ भूला है, साथ तो कुछ जाने वाला नहीं। अपना सर्वस्व तो तू भक्ति की बाजी पर ही वार दे। तू गुरु के सत्य वचनों को मत भुला।" जीवन की निस्सारता के बारे में वे कहते हैं कि "जो दिन आया है वह तो चला ही जायेगा। तूने इस संसार को सत्य समझ रखा है यह तेरी भूल है। अहंभाव छोड़कर तू ईश्वर की बंदगी कर। सारा जन्म तो यों ही बीत गया, मृत्यु आ गयी, चारों ओर अंधकार ही अंधकार है। भला अब तुझसे क्या हो सकेगा? ऐ नादान! तू इस बात को क्यों नहीं समझता कि यह संसार नाशवान है।" संत रैदास को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि जिस बात का वे उपदेश दे रहे हैं, उसका व्यावहारिक आदर्श भी साथ-ही-साथ स्वयं प्रस्तुत कर रहे हैं। यह उनका दंभ या गर्व नहीं था। यह उनका दृढ़ विश्वास ही कहा जायेगा। रैदास ने अपना सारा भार ईश्वर को दे दिया था। वे कहते हैं—"राह पहाड़ और जंगलों से पूर्ण है। कहीं यह न हो कि भवसागर पार करते-करते यह नाव डूब जाये। वे कहते हैं कि उन्होंने तो राम-नाम का धन लादा है। संसार को पूर्णतः भुला

दिया है। उन्हें तो यम का डंडा लगेगा ही नहीं। संसार का रंग तो बदलता ही रहता है। उनका रंग नहीं बदलेगा क्योंकि उनका मजीठ रंग है। वह रंग पक्का है।"

रैदास ने साधु को बहुत ही ऊँचा स्थान दिया है। उच्चवर्ग की जातियों से भी अधिक साधु की महिमा है। जिस कुल में साधु जन्म लेता है वहाँ पर तो वर्ण और अवर्ण का सवाल ही नहीं रह जाता। जिसने भक्ति का मार्ग पकड़कर संसार के समस्त जंजालों को दूर कर दिया, जिसने संसार के समस्त विषयभोग तज दिये हैं, जो रामरस पीकर संसार से अलिप्त हो चुका है, ऐसे साधु या भक्त से पंडित, सूर, क्षत्रपति, राजा या अन्य कोई भी हो, वह बड़ा नहीं होता। भक्त इस संसार में रहकर भी माया और भोगों से अलिप्त रहते हैं। जैसे कि पानी में रहकर भी कमल जल से अलिप्त ही रहता है। साधु का मार्ग बहुत ही कठिन है। बाहरी आवरणमात्र धारण कर लेने से कोई साधु नहीं हो जाता। साधु तो वही है जो परमात्मा के मिलन का आनंद जानता है। ईश्वर से मिलन का आनंद हर कोई नहीं समझ सकता। मिलन का रस तो सुहागिन ही जानती है। सारा आनंद तज कर वह पिया से एकाकार हो जाती है। वह अपना तन-मन दे डालती है। जिसके खुद के अन्तर में दर्द नहीं है वह दूसरे का दर्द कैसे समझ सकता है? जिसने राम की भक्ति नहीं की वह तो अवश्य ही अभागिन है। उसने तो लोक और परलोक बिगाड़ लिया है। राम की भक्ति का मार्ग अत्यधिक दुखदायी है। वहाँ तो अकेले ही कदम उठाना पड़ता है, वहाँ कोई साथ नहीं देता।"

रैदास की उपासना निराकार निर्गुण ब्रह्म की ही उपासना थी। उनकी भक्ति तो इच्छा रहित है। वे केवल भगवान के दर्शन ही चाहते हैं। उसका फल नहीं। उनका कहना भी है "न तो मैं राम का जन कहलाना चाहता हूँ, न दास बनकर सेवा ही करना चाहता हूँ, योग, यज्ञ आदि कुछ नहीं जानता, उससे तो उदासीन रहता हूँ। यदि भक्त बनता हूँ तो लोग बड़ाई करने लग जाते हैं, जो मैं नहीं चाहता। अहं और मोह में रहकर मैंने अपना मूल गंवा दिया है। जब तक मन एकाग्र नहीं होता तब तक कृष्ण, राम, रहीम आदि कुछ नहीं दिखाई देता। वेद, कुरान, पुराण आदि में से एक ने भी हरि का सहज रूप नहीं देखा है। मैं तो सिर्फ उसको ही पूजता हूँ जिसका कोई विशेष नाम या स्थान नहीं है।"

संत रैदास ने बाह्याचारों का भी विरोध किया है। ईश्वर की प्राप्ति में ये किसी बाहरी आड़म्बर की आवश्यकता नहीं समझते। वे कहते हैं कि भाई! भक्ति तो ऐसी चीज है जिसमें अभिमान के लिए तो बिल्कुल ही स्थान नहीं। ऐ नादान! तू पूर्णतः अभिमान को तज दे। धूल में यदि शक्कर मिल जाये तो उसे चींटी ही अलग कर सकती है। हाथी उसे अलग नहीं कर सकता। रस प्राप्ति के लिए तो नन्हें-से-नन्हा बनने की आवश्यकता है--

"भगती ऐसी सुनहु रे भाई। आइ भगति तब गई बड़ाई।

कहि रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पांवे,

तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपिलक ह्वै चुनि खावे।"

संत रैदास साधना को सरल-से-सरल रखने में विश्वास करते हैं। बाहरी साधनों का व्यर्थता प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि "हे राम! तुझे मैं पूजा में भला क्या चढ़ाऊँ मन लायक फल-फूल तो मिलते ही नहीं। दूध चढ़ाता तो वह भी बछड़े ने जूठा कर दिया है। फूल को भौरों ने सूंघ लिया है। जल को मछली ने पवित्र नहीं रहने दिया: मलयागिरि को साँपों ने खराब कर दिया

है। विष और अमृत दोनों ही एक साथ हैं मेरे तो मन ही में तेरी पूजा है। मन में ही धूप है। तेरे सहज रूप की तो मैं मन-ही-मन आराधना करता हूँ। मैं तो पूजा-अर्चना कुछ भी नहीं जानता। पता नहीं मेरी कौन-सी गति होगी।"

रविदास का प्रभाव इनके जीवन काल में ही पूर्णतः फैल चुका था। अपने को छोटा बताना संतों की विशेषता है। रैदास ने भी अपने को, अपनी जाति को, अपने कर्म को ओछा बतलाया है। यह उनकी विनम्रता है। भक्ति की यही खूबी भी है कि अभिमान खत्म हो जाता है। इन्होंने स्वयं कहा है –

"जाति भी ओछी, करम भी ओछा,
ओछा किसब हमारा।
नीच से प्रभु ऊँच कियो हैं,
कह रैदास चमारा।"

प्रचलित परम्परा के अनुसार, संत रैदास स्वामी रामानंद की शिष्य परम्परा में आते हैं। 'भक्त-माल" के टीकाकार प्रियदास ने संत रैदास की शिष्या के रूप में मीरा और झालीरानी का नाम लिया है। कहा जाता है कि हस्तलिखित रूप में इनकी कई रचनाएँ राजस्थान में पड़ी हुई हैं। परन्तु सम्पादित होकर अब तक इनका कोई भी प्रामाणिक संग्रह नहीं निकला है। वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से इनकी वाणियों का एक संग्रह "रविदासजी की वाणी" के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संस्करण में आये बहुत से पद गुरु ग्रन्थ साहिब में उपलब्ध होते हैं। इसमें फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है। ऐसे इनकी काव्य-भाषा ब्रज-मिश्रित अवधी है। इनके अनुयायी महाराष्ट्र एवं राजपूताना में भी पाये जाते हैं। गुजरात, बिहार आदि में तो लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने को "रैदासी" कहते हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं में संत रैदास को "सत्य पथ दिग्दर्शक" की संज्ञा से विभूषित किया है। इनके अष्टांग साधन "गृह, सेवा, संत, नाम, ध्यान, प्रणति, प्रेम और विलय समाधिः" कहे जाते हैं। इन्हीं के नाम पर रैदासी सम्प्रदाय प्रचलित हुआ।

इस प्रकार, जाति, राष्ट्र व जगत् को अपने दिव्य-महान संदेशों द्वारा निरंतर निनादित कर सफल जीवन की ओर प्रेरित करने वाले, धन्ना-पीपा के संगी, प्रातः स्मरणीय, चिरवंदनीय संत रैदासजी पूरे १२० वर्ष के होकर ब्रह्मपद में लीन हो गये। इनके पंथ के अनुयायियों का विश्वास है कि वे संदेह स्वर्ग में चले गये। वस्तुतः विशुद्ध भक्ति भावना ने रैदास को भगवान का स्वरूप बना दिया। भक्ति की पवित्रता, आराध्य के प्रति सर्वस्व समर्पण की स्पष्ट अलौकिकता संत रैदास की पहचान बन गयी। भजन और कीर्तन के द्वारा वे जो कुछ दे गये, वे अनमोल है। उसके सहारे हम भगवान को प्राप्त कर सकते हैं।

□

केवल वही व्यक्ति सब की अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जाएगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जाएगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को संपूर्ण रूप से परिवर्तन कर सकती है।

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

"दिल्ली में स्वामीजी एक गरीब बंगाली के घर ठहरे थे। वहाँ पर एक व्यक्ति ने उनसे पूछा, 'स्वामीजी ! मैं इतना जप-ध्यान करता हूँ, तो भी कुछ 'लाइट' (आलोक) क्यों नहीं मिलता है ? इस पर स्वामीजी ने कहा था, 'जिनका अर्थ नहीं समझते ऐसे स्तोत्रों को छोड़कर अपनी निजी भाषा में उन्हें पुकारो; देखोगे कि 'लाइट' मिल रहा है।" लाटू महाराज कथित किसी प्रसंग में यह घटना आयी है।

"अलवर स्टेशन पर उतरने के बाद स्वामीजी ने एक व्यक्ति को दूर खड़े देखा और किसी को कुछ कहे बिना ही उसकी ओर चले गये। इधर बड़े-बड़े लोग उन्हें स्टेशन पर लेने को आये हुए थे। स्वामीजी उन लोगों के साथ गये, परन्तु उन लोगों के यहाँ ठहरे नहीं। एक दिन एक बड़े आदमी के घर से कोई हम सबको निमन्त्रण देने आया और उसी दिन एक बुढ़िया भी आयी थी। स्वामीजी ने बुढ़िया से कहा, 'आज हम लोग तेरे घर पर खायेंगे। उसी बार की तरह माटी-मोटी रोटियाँ बनाना।' बड़े आदमी के घर से जो व्यक्ति निमंत्रण देने आया था, उसे कह दिया कि किसी दूसरे दिन आयेंगे। देखो तो, विवेकानन्द-भाई का कैसा प्रेम है ! इस बुढ़िया ने ही पिछली बार (परिव्राजक अवस्था में भ्रमण करते समय) स्वामीजी को आश्रय दिया था, वहीं से समाचार पाकर अलवर के राजा ने उन्हें राजभवन में बुला लिया था। इसी कारण इस बार भी बुढ़िया को ही पहले मान दिया। पहले बुढ़िया की इच्छा पूर्ण की, तत्पश्चात् वहाँ के बड़े लोगों का स्नेह-यत्न स्वीकार किया।

"राजपुताना में लाटू महाराज ने खेतड़ी के महाराज के साथ इतनी बुद्धिमत्तापूर्वक बातचीत की कि महाराज नहीं समझ पाये कि वे बिल्कुल निरक्षर हैं। अपितु उनकी बातचीत पर विशेष आनन्दित होकर खेतड़ीनरेश ने स्वामीजी के समक्ष उनकी बड़ी प्रशंसा की थी।" ('उद्बोधन' मासिक से) कृष्णलाल महाराज के मुख से यह घटना हमें और भी विस्तारपूर्वक सुनने को मिली है जो इस प्रकार है—"खेतड़ी के महाराज ने एक दिन एक ग्लोब लेकर लाटू महाराज को विभिन्न देश दिखाये। लाटू महाराज ने इसके पहले कभी ग्लोब नहीं देखा था। स्वामीजी ने देखा कि खेतड़ीनरेश उन्हें इस सम्बन्ध में बहुत सी बातें कह रहे हैं। स्वामीजी ने तुरन्त लाटू महाराज की हालत भाँप ली और स्वयं ही वहाँ जाकर ऐसे ढंग से लाटू महाराज को बचा दिया कि राजा समझ ही नहीं सके कि स्वामीजी के ये गुरुभाई एक निरक्षर साधु हैं।"

विस्मय की बात तो यह है कि राज-अतिथि होकर भी लाटू महाराज ने एक दिन भी राज-अन्न ग्रहण नहीं किया। "वे (ठाकुर) कहते थे, 'साधु को राजा का अन्न नहीं खाना चाहिए।' इसीलिए चुपचाप बाहर जाकर खा आता था। राजा के पूछने पर कह देता, 'खा लिया है।' एक दिन मैंने राजा के दरबान से बलपूर्वक बैंगन का भर्ता और रोटी माँग ली थी। वह किसी

भी हालत में देने को तैयार न था, भय था कि कहीं राजा जान गये तो वे क्या कहेंगे।"

"उनके ऐसे अनेक भाव थे जिनके साथ दूसरे अनेक लोगों का भाव नहीं मिलता था। इस कारण वे संघ के भीतर नहीं रह सके। वे एक अलग ही प्रकार का जीवन बिता गये हैं।" (उद्बोधन) खेतड़ी से चलकर सभी जयपुर आये। वहाँ से लाटू महाराज और भी कुछ गुरुभाइयों के साथ कलकत्ता लौट आये।

१७. गंगातट पर तपस्या

हम यह पहले ही बता देना उचित समझते हैं कि ठाकुर के देहत्याग के बाद अर्थात् १८८६ से १८९७ ई० तक लाटू महाराज के साधक-जीवन की बातें काफी अल्प ही सुनने को मिली हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इन बारह वर्षों के दौरान उन्होंने कठोरतम साधनाएं की थीं। उनके सभी गुरुभाई स्वीकार करते हैं कि इस काल में उन्होंने अद्भुत् तपस्या की थी। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'लाटू ने किस प्रकार के परिवेश से आकर थोड़े ही दिनों में आध्यात्मिक जगत् में जितनी उन्नति कर ली, और हम लोगों ने जिस अवस्था से आकर जितनी उन्नति की है—इन दोनों की तुलना करने से पता चलता है कि वह हम लोगों की अपेक्षा काफी बड़ा है। हम सभी उच्चवंश में पैदा हुए और पढ़ना-लिखना सीखकर परिमार्जित बुद्धि के साथ ठाकुर के पास आये थे। परन्तु लाटू पूर्णतः निरक्षर था। कभी ध्यान-धारण में मन नहीं लगा तो हमलोग पठन-पाठन करके अपने मन का वह भाव दूर कर सकते थे, परन्तु लाटू को दूसरा कोई अवलम्बन नहीं था। उसे केवल एक ही भाव का आश्रय लेकर चलना पड़ा था। केवल ध्यान-धारणा की सहायता से ही लाटू जो अपने मस्तिष्क को ठीक रखकर अति निम्न अवस्था से प्रारम्भ कर उच्चतम आध्यात्मिक सम्पदा का अधिकारी हुआ, इसमें उसकी अन्तर्निहित शक्ति और उसके प्रति ठाकुर की असीम कृपा का संकेत मिलता है।" (बंगला 'सत्कथा' ग्रन्थ की स्वामी सारदानन्द लिखित भूमिका से उद्धृत।)

सचमुच ही श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव की छोड़ लाटू के लिए दूसरा कोई अवलम्ब नहीं था। अपना सारा जीवन ही वे उन्हीं पर निर्भर रहकर बिता गये। एक वाक्य में यदि कहना हो तो श्रीरामकृष्ण ही उनके जीवन के सर्वस्व थे; केवल कहने के लिए सर्वस्व नहीं अपितु कर्म, प्रेरणा, धर्म, धारणा, प्रेम, उन्माद आदि सब में श्रीरामकृष्ण ही उनके सर्वस्व थे। जब तक वे जीवित थे, तब तक सेवक लाटू उन्हीं के निर्देशानुसार चलता था। ठाकुर के देहावसान के बाद भी उनका वही भाव बना रहा, तब भी वे उन्हीं को मानकर चलते, किसी अन्य के निर्देश को अपनी जीवनयात्रा के आधार के रूप में स्वीकार नहीं कर सके। उस समय भी वे किस प्रकार ठाकुर का निर्देश समझ लेते थे, यह उन्हीं के मुख से हमने सुना है, 'वे (ठाकुर) ही मुझे चला रहे हैं, नहीं तो फिर मेरे जैसा मूर्ख क्या साधना कर सकता है? साधना मुझे कहाँ मालूम है? वे ही तो मुझे पथ दिखा देते हैं।' ठाकुर के ऊपर इस तरह की निर्भरता ने ही उनके सम्पूर्ण जीवन को सार्थक बना दिया था।

जहाँ तक हमने सुना है लाटू महाराज सर्वदा ही ठाकुर की बातों पर अटूट विश्वास रखते थे। हम पहले ही कह आये हैं कि देहावसान के बाद वाले दिन ही ठाकुर ने माताजी को दर्शन देकर कहा था, 'मैं क्या कहीं गया हूँ जो? यहीं तो हूँ; बस इस कमरे से उस कमरे में गया हूँ।' इन कुछ उक्तियों को उन्होंने बहुत बड़ा सत्य मानकर स्वीकार कर लिया था। इसीलिए जब कभी वे किसी समस्या में पड़ते तो ठाकुर की ओर देखते हुए उन्हीं के निर्देश की प्रतीक्षा करते रहते। जब तक उनकी ओर से कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिल

जाता, तब तक लाटू महाराज उस समस्या बहुल कार्य में अग्रसर नहीं होते। ऐसा कितनी ही बार हुआ है जब उन्हें महीनों और वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है। बलराम मन्दिर में एक दिन उन्होंने हम लोगों से कहा था - "तुम लोगों में भला निर्भरता कहाँ है ! दो दिन उन्हें पुकारने के बाद उत्तर नहीं मिला तो तुरन्त ही अपनी इच्छानुसार कार्य करने में लग जाते हो मानो भगवान से अधिक तुम्हीं समझते हो। उनके ऊपर निर्भर करने का अर्थ है उनके आदेशानुसार चलना अर्थात् उनका हुकुम पाये बिना तुम कुछ भी नहीं करोगे, भले ही इससे तुम्हारा हजारों का नुकसान क्यों न हो जाय, परन्तु इस पर भी तुम नहीं टलोगे। तभी तो तुम कह सकते हो कि उनके ऊपर निर्भर हूँ। विवेकानन्द-भाई एक बात कहता था, 'राम की प्राप्ति नहीं हुई तो क्या श्याम के साथ घर बसाऊँगा -यह तो ठीक नहीं ! बहुत हुआ तो एक जीवन उनके लिए व्यर्थ हो जायगा।' देखो तो वह उनके ऊपर कैसा निर्भर रहता था। एक जीवन उनके लिए बेकार ही दे देने को तैयार था। इसी भाव से उन्हें (ठाकुर को) पकड़ना चाहिए। तभी तो वे तुम लोगों को पथ दिखाकर ले जाएँगे।"

उनकी बात सुनकर भक्त ने पूछा—"महाराज ! हम लोगों में वह निर्भरता क्यों नहीं आती ?"

लाटू महाराज—"तुम लोग अपनी बुद्धि और अभिमान को उनसे भी ज्यादा मानते हो। उनके आदेश की प्रतीक्षा करने को तुम तैयार नहीं होते, थोड़े में ही धैर्य खो बैठते हो, इसीलिए।"

इस वार्तालाप से यह समझ में आ जाता है कि ठाकुर के देहत्याग के पश्चात् लाटू महाराज कितने धैर्यपूर्वक उनके (ठाकुर के) आदेश की प्रतीक्षा करते रहते थे।

हम पहले ही कह आये हैं कि काशीपुर के उद्यान में ही ठाकुर की कृपा से लाटू महाराज के समक्ष समाधि का जगत् खुल गया था। बहुत से लोगों की धारणा है कि समाधि के पश्चात् साधना की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। परन्तु यह धारणा साधकों को मान्य नहीं है। जहाँ तक हमें ज्ञात है - सभी साधक समाधि के इच्छुक होते हैं और उस अवस्था की उपलब्धि के लिए आप्राण चेष्टा करने में भी पीछे नहीं हटते। हमने लाटू महाराज के मुखसे सुना है—"समाधि क्या सहज बात है ! कितनी ध्यान धारण करने पर तब कहीं थोड़ा-सा उनमें मन स्थिर होता है; उनमें मन स्थिर होने के बाद ही उनके भाव और ऐश्वर्य समझे जा सकते हैं। उनके अनन्त भाव हैं, अनन्त ऐश्वर्य हैं, जिनके परे तुम कैसे जाओगे ? उनके भाव और ऐश्वर्य को समझने) की साधना में हो तो हजार-दो हजार जन्म बीत सकते हैं। परन्तु इससे भी क्या ? उनके भाव और ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर भी उनकी सम्पूर्ण उपलब्धि नहीं हो जाती। उनकी उपलब्धि से तात्पर्य है उनके भाव और ऐश्वर्य के भी परे जाकर उन्हें पकड़ना ! भाव और ऐश्वर्य के परे जाना कोई हँसी-खेल नहीं है ! यदि वे ही साधक पर कृपा करके अपने भाव और ऐश्वर्य के परे ले जाना चाहें, तभी साधक उन तक पहुँच सकता है; उनकी कृपा होने पर ही साधक के मन का नाश हो जाता है, बुद्धि का नाश हो जाता है, अन्यथा किसमें क्षमता है कि वह अपने प्रयास से अपने मन-बुद्धि का नाश कर सके ? मन-बुद्धि का नाश होने पर ही समाधि होती है।"

इस पर एक भक्त ने विस्मित होकर पूछा—"महाराज ! यह आप क्या कहते हैं कि साधक अपने प्रयास से समाधि तक नहीं पहुँच सकता ? हम तो यही जानते हैं कि ध्यान-धारणा करते-करते समाधि तक पहुँचा जा सकता है।"

लाटू महाराज—"तुम लोग जो जानते हो वह ठीक ही है परन्तु ध्यान-धारणा से जो समाधि होती है उसको वे (ठाकुर) चेतन-समाधि कहते थे। उसमें भाव और ऐश्वर्य की लीला चलती है। वे (ठाकुर) एक अन्य प्रकार की समाधि की बात भी कहते थे। उस समाधि में मन का लय हो जाता है, 'मैं' नहीं रह जाता।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

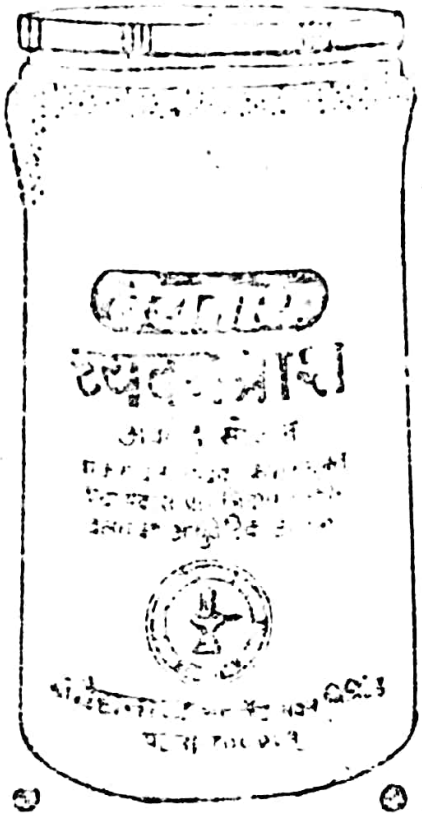

आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ७०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में उनकी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०६ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या — बी. एच. पी. — १४-८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातञ्जल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
संस्मरणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१४.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	४.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रतिनिधिक संचयन)	२५.००
" (सस्ता संस्करण)	१०.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.००
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	५.००
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	४.५०
युवकों के प्रति	६.००
विवेकानन्द— राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२५
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर—४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकान्त लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना — ४ में मुद्रित।